उत्तर प्रदेश के सांस्कृतिक केन्द्र

(१)

मथुरा

लेखक तथा संपादक
श्री कृष्णदत्त वाजपेयी, एम० ए०, विद्यालंकार
संग्रहाध्यक्ष, पुरातत्त्व संग्रहालय
मथुरा

शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश
लखनऊ

प्रथम संस्करण] १९५५ [मूल्य १)

विषय-सूची

चित्र-सूची

प्राक्कथन

इतिहास और पुरातत्त्व की दृष्टि से उत्तर प्रदेश का भारत में प्रमुख स्थान है। प्राचीन काल में इस प्रदेश की संज्ञाएं 'मध्यदेश' तथा 'आर्यावर्त' थीं। भारतीय सभ्यता बहुत समय तक गंगा-यमुना की अन्तर्वेदी में और इसकी सहायक नदियों के कांठों में फूलती-फलती रही। इस भू-भाग के अनेक नगर सांस्कृतिक केन्द्रों के रूप में विकसित हुए। इन नगरों के इतिहास में भारतीय राजनीति, धर्म, दर्शन, कला और लोकजीवन की बहुमुखी गाथा संजोयी हुई है।

उत्तर प्रदेश के प्रमुख ऐतिहासिक नगरों के सम्बन्ध में सचित्र परिचय-पुस्तिकाएं प्रकाशित करने की योजना उस समय बनी थी जब मैं १९५१–५२ में इस प्रदेश के पुरातत्त्व-अधिकारी पद पर कार्य कर रहा था। उस समय हस्तिनापुर , अहिच्छत्रा, मथुरा और कनौज—इन चार ऐतिहासिक नगरों के विवरण तैयार किये गये। उन्हें अब उत्तर प्रदेश के शिक्षा-विभाग द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है कि इस प्रदेश के शेष मुख्य प्राचीन स्थलों—कांपिल्य, सांकाश्य, श्रावस्ती, अयोध्या, कौशांबी, प्रयाग, काशी, सारनाथ, महोबा, कालिंजर, आगरा, जौनपुर तथा लखनऊ के संबंध में भी यथासमय इस प्रकार की पुस्तिकाएं प्रकाशित की जा सकेंगी।

प्रदेश के प्राचीन सांस्कृतिक केंद्रों पर इस पुस्तकमाला को प्रकाशित करने का मुख्य उद्देश्य यह है कि इसके द्वारा हमारे विद्यार्थी-वर्ग तथा जनसाधारण को अपने प्रदेश के गौरवमय इतिहास की सम्यक् जानकारी हो सके और वे उन सांस्कृतिक धाराओं को जान सकें जिन्होंने समय-समय पर भारतीय इतिहास को प्रभावित किया है। इन पुस्तकों को जानबूझ कर जटिल या अतिविस्तृत बनाने का प्रयत्न नहीं किया गया। पाद-टिप्पणियों के रूप में जो संदर्भ एवं संकेत दिये गये हैं वे इसलिए कि संबद्ध विषयों में विशेष अन्वेषण करने वाले विद्यार्थियों को उनसे सहायता मिल सके। पुरातत्व, साहित्य एवं अनुश्रुति-विषयक सामग्री का यथोचित उपयोग करने का प्रयत्न किया गया है। ऐतिहासिक विवरण क्रमबद्ध रूप में दिये गये हैं।

इस ग्रंथमाला का मुख्य श्रेय उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री डा०सम्पूर्णानन्द जी को है,जो इस प्रकार की सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के मूल प्रेरणास्रोत हैं। उनके बहुमूल्य सुझाव मुझे समय-समय पर प्राप्त होते रहे हैं, जिनके लिए मैं उनका हार्दिक आभारी हूं।

इस पुस्तक में प्रकाशित रेखाचित्र लखनऊ के कुशल चित्रकार श्री जगदंबा प्रसाद वाजपेयी तथा सुश्री मीनाक्षी बटेश्वरकर द्वारा तैयार किये गये हैं, जो धन्यवाद के पात्र हैं। भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग के प्रति भी मैं आभार प्रकट करता हूं, जिसकी रिपोर्टों आदि से इस पुस्तक में सहायता ली गयी है।

पुरातत्त्व संग्रहालय, मथुरा :

—कृष्णदत्त वाजपेयी

१५ अगस्त, १९५५।

अध्याय १

स्थिति, नाम तथा विस्तार

मथुरा नगर उत्तर प्रदेश के पश्चिम में २७°२८'/उ० अक्षांश तथा ७७°४१'/पू० देशांतर पर स्थित है। भारत के इतिहास में मथुरा का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। प्राचीन काल से लेकर अब तक इस नगर को भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख केन्द्र होने का गौरव प्राप्त रहा है। इसकी गणना भारत की प्रसिद्ध सात महा-पुरियों में की गयी है। धर्म, दर्शन, कला, भाषा और साहित्य के विकास में मथुरा का बड़ा योग रहा है।

शूरसेन तथा मथुरा—वर्तमान मथुरा तथा उसके आसपास का प्रदेश, जिसे 'ब्रज' कहा जाता है, प्राचीन काल में 'शूरसेन' जनपद के नाम से प्रख्यात था। इसकी राजधानी मधुरा या मथुरा नगरी थी। जनपद की 'शूरसेन' संज्ञा संभवतः श्रीराम के छोटे भाई शत्रुघ्न के पुत्र शूरसेन के नाम पर पड़ी, जिन्होंने कुछ समय तक इस प्रदेश पर शासन किया था।

जनपद का शूरसेन नाम प्राचीन हिन्दू, बौद्ध एवं जैन साहित्य में तथा यूनानी लेखकों के वर्णनों में मिलता है। मनुस्मृति में शूरसेन को ब्रह्मर्षिदेश के अन्तर्गत माना गया है (१)। प्राचीन काल में ब्रह्मावर्त तथा ब्रह्मर्षिदेश को बहुत पवित्र समझा जाता था और यहां के निवासियों का आचार-विचार श्रेष्ठ एवं आदर्शरूप माना जाता था (२)। ऐसा प्रतीत होता है कि शूरसेन जनपद की यह संज्ञा लगभग ईसवी सन् के आरम्भ तक जारी रही। जब उस समय से यहां विदेशी शक कुषाणों का प्रभुत्व हुआ, संभवतः तभी से जनपद की संज्ञा उसकी राजधानी के नाम पर मथुरा हो गयी। तत्कालीन तथा उसके बाद के जो अभिलेख मिले हैं उनमें प्रायः मथुरा नाम ही मिलता है, शूरसेन नहीं। अधिकांश साहित्यिक ग्रंथों में भी अब शूरसेन के स्थान पर मथुरा नाम मिलने लगता है। इस परिवर्तन का मुख्य कारण यह हो सकता है कि शक-कुषाण कालीन मथुरा नगर इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर गया कि लोग जनपद या प्रदेश के नाम को भी मथुरा नाम से पुकारने लगे होंगे और धीरे-धीरे जनपद का शूरसेन नाम जन-साधारण के स्मृति-पटल से उतरने लगा होगा (३)। प्राचीन शूरसेन जनपद का विस्तार साधारणतया दक्षिण में चंबल नदी से लेकर उत्तर में वर्तमान मथुरा नगर के लगभग ५० मील उत्तर कुरु राज्य की सीमा तक था। पश्चिम में इसकी सीमा मत्स्य जनपद से और पूर्व में पंचाल राज्य की सीमाओं से मिलती थी (४)।

ई० सातवीं शती में जब चीनी यात्री हुएन-सांग यहां आया तब उसने लिखा कि मथुरा राज्य का विस्तार ५,००० ली (लगभग ८३३ मील) था। इस वर्णन से पता चलता है कि सातवीं शती में मथुरा राज्य के अन्तर्गत

---

(१) "कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पंचालाः शूरसेनकाः। एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः॥" (मनु०, २,१६)।

(२) मनुस्मृति, २,१८ तथा २०।

(३) वराहमिहिर ने अपनी बृहत्संहिता में मध्यदेश के जनपदों की गणना करते समय 'माथुरक' तथा 'शूरसेन'—इन दोनों नामों का उल्लेख किया है—"माथुरकोपज्योतिषधर्मारण्यानि शूरसेनाश्च।" (बृहत्संहिता, १४,३)।

(४) दृष्टव्य मार्कंडेय पुराण (पार्जीटर का सं०), पृ० ३५१—५२, नोट।
महाभारत में कुरु, पंचाल, चेदि तथा मत्स्य जनपदों के साथ शूरसेन का नाम मिलता है—
"सन्ति रम्याः जनपदाः बह्वन्नाः परितः कुरून्।
पांचालाश्चेदिमत्स्याश्च शूरसेनाः पटच्चराः॥" (विराट पर्व, ४,१,६)।

वर्तमान मथुरा–आगरा जिलों के अतिरिक्त आधुनिक भरतपुर तथा धौलपुर जिले और उपरले मध्यभारत का उत्तरी लगभग आधा भाग रहा होगा। दक्षिण-पूर्व में मथुरा राज्य की सीमा जेजाकभुक्ति (जिझौती) की पश्चिमी सीमा से तथा दक्षिण-पश्चिम में मालव राज्य की उत्तरी सीमा से मिलती रही होगी। सातवीं शती के बाद से मथुरा राज्य की सीमाएं घटती गयीं। इसका प्रधान कारण समीप के कनौज राज्य की उन्नति थी, जिसमें मथुरा तथा अन्य पड़ोसी राज्यों के बड़े भू-भाग सम्मिलित हो गये।

मथुरा का प्राचीन रूप 'मधुरा' मिलता है। वाल्मीकि रामायण, महाभारत, हरिवंश तथा अन्य अनेक पुराणों में इस नगरी के नाम मधुरा, मथुरा, मधुपुर, मधुपुरी आदि मिलते हैं। एक जैन उपांग ग्रंथ में 'महुरा' नाम आया है (५)। यादवप्रकाश के वैजयन्ती कोश में मथुरा के दो नाम 'मधूपिका' और 'मधूपघ्ना' भी मिलते हैं। हेमचन्द्राचार्य ने भी अपने ग्रंथ अभिधानचिंतामणि (पृ० ३६०) में 'मथुरा' और 'मधूपघ्ना' नाम दिये हैं। प्राचीन अभिलेखों में 'मधुरा' और 'मथुला' नाम आये हैं (६)।

वाल्मीकि रामायण तथा पौराणिक साहित्य से ज्ञात होता है कि 'मथुरा' नामकरण मधु नामक दैत्य या असुर के कारण हुआ। सबसे प्राचीन नगर जो मधु के द्वारा या उसके पुत्र लवण द्वारा बसाया गया वह मधु के नाम पर 'मधुपुर' या 'मधुपुरी' कहाया। इसके समीप का घना वन 'मधुवन' कहलाता था। रामायण (७) से यह भी ज्ञात होता है कि यह नगर यमुना के पश्चिम तट पर बसा हुआ था। जब अयोध्या से श्री राम के भाई शत्रुघ्न लवण को जीतने के लिए मधुपुरी चले तब उन्हें अपनी यात्रा में पहले गंगा पार करनी पड़ी और फिर यमुना; तब वे मधुपुरी के फाटक तक पहुंचे। इस मधुपुरी की पहचान आधुनिक महोली गांव से की गयी है, जो वर्तमान मथुरा नगर से लगभग साढ़े तीन मील दक्षिण-पश्चिम है। इसे अब मधुवन-महोली कहते हैं।

---

(५) "महुरा य सूरसेणा।" (इंडियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द २०, पृ० ३७५)।

(६) ल्यूडर्स लिस्ट, सं० १३४५, पृ० १६५ तथा सं० ६३७, पृ० ६५।

(७) रामायण, उत्तरकांड ६२, १७ तथा ६८, ३।

अध्याय २

प्राचीन राजवंश

श्री कृष्ण के पूर्व शूरसेन जनपद पर जिन राजवंशों ने शासन किया उनके सम्बन्ध में कुछ विवरण पौराणिक तथा अन्य साहित्य में मिलते हैं। सबसे प्राचीन सूर्यवंश मिलता है, जिसके प्रथम राजा—वैवस्वत मनु से इस वंश की परम्परा मानी गयी है। मनु के कई पुत्र हुए, जिन्होंने भारत के विभिन्न भागों पर राज्य किया। बड़े पुत्र इक्ष्वाकु थे, जिन्होंने मध्य देश में अयोध्या को अपनी राजधानी बनाया। अयोध्या का राजवंश मानव या सूर्य वंश का प्रधान वंश हुआ और इसमें अनेक प्रतापी शासक हुए।

मनु के दूसरे पुत्र का नाम नाभाग मिलता है और इनके लिए कहा गया है कि इन्होंने तथा अंबरीष आदि इनके वंशजों ने यमुनातट पर राज्य किया। यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि नाभाग तथा उनके उत्तराधिकारियों ने कितने प्रदेश पर और किस समय तक राज्य किया।

चंद्रवंश—मनु की पुत्री का नाम इला था, जो चन्द्रमा के लड़के बुध को ब्याही गयी। उससे पुरूरवा का जन्म हुआ और इस पुरूरवा ऐल से चन्द्रवंश चला। सूर्य वंश की तरह चन्द्र वंश का विस्तार बहुत बड़ा और धीरे-धीरे उत्तर तथा मध्य भारत के विभिन्न प्रदेशों में इसकी शाखायें स्थापित हुई।

पुरूरवा ने प्रतिष्ठान (८) में अपनी राजधानी स्थापित की। पुरूरवा के उर्वशी से कई पुत्र हुए। सबसे बड़े का नाम आयु था, जो प्रतिष्ठान की गद्दी का अधिकारी हुआ। दूसरे पुत्र अमावसु ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) में एक नये राज्य की स्थापना की। आयु के बाद अमावसु का पुत्र नहुष मुख्य शाखा का अधिकारी हुआ। इसका लड़का ययाति भारत का पहला चक्रवर्ती सम्राट् हुआ, जिसने अपने राज्य का बड़ा विस्तार किया (९)। ययाति के दो पत्नियां थीं—देवयानी और शर्मिष्ठा। पहली से यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र हुए और दूसरी से द्रुह्यु, पुरु तथा अनु हुए। पुराणों से यह भी पता चलता है कि ययाति अपने बड़े लड़के यदु से रुष्ट हो गया था और उसे शाप दिया था कि यदु या उसके लड़कों को राजपद प्राप्त करने का सौभाग्य न प्राप्त होगा (१०)। ययाति अपने सबसे छोटे लड़के पुरु को बहुत चाहता था और उसी को उसने राज्य देने का विचार प्रकट किया। परन्तु राजा के सभासदों ने ज्येष्ठ पुत्र के रहते हुए इस कार्य का विरोध किया (११)। यदु ने पुरु के पक्ष का समर्थन किया और स्वयं राज्य लेने से इनकार कर दिया। इस पर पुरु को राजा घोषित किया गया और वह प्रतिष्ठान की मुख्य शाखा का शासक हुआ। उसके वंशज 'पौरव' कहलाये।

---

(८) प्रतिष्ठान के सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कुछ लोग इसे प्रयाग के सामने वर्तमान झूंसी और उसके पास का पीहन गांव मानते हैं। अन्य लोगों के मत से गोदावरी के किनारे वर्तमान पैठन नामक स्थान प्रतिष्ठानपुर था। तीसरे मत के अनुसार प्रतिष्ठान उत्तर के पर्वतीय प्रदेश में यमुना-तट पर था। चिंतामणि विनायक वैद्य का अनुमान है कि पुरूरवा उत्तराखंड का पहाड़ी राजा था और वहीं उसका उर्वशी अप्सरा से संयोग हुआ। उसके पुत्र ययाति ने पर्वत से नीचे उतर कर सरस्वती के किनारे (वर्तमान अम्बाला के आस-पास) अपना केन्द्र बनाया। (वैद्य—दि सोलर एँड लूनर क्षत्रिय रेसेज आफ इंडिया, पृ० ४७-४८)।

(९) पुराणों के अनुसार ययाति ने सप्तद्वीप पृथ्वी को जीता। दे० हरिवंश १,३०,७ तथा १६।

(१०) हरिवंश १,३०,२९।

(११) महाभारत (नवीन पूना संस्करण, १९३३), १,८०,१३-१५।

अन्य चारों भाइयों को जो प्रदेश दिये गये उनका विवरण इस प्रकार है—यदु को चर्मण्वती (चंबल), वेत्रवती (बेतवा) और शुक्तिमती (केन) का तटवर्ती प्रदेश मिला। तुर्वसु को प्रतिष्ठान के दक्षिण का भू-भाग मिला और द्रुह्यु को उत्तर-पश्चिम का। गंगा-यमुना दोआब का उत्तरी भाग तथा उसके पूर्व का कुछ प्रदेश, जिसकी सीमा अयोध्या राज्य से मिलती थी, अनु के हिस्से में आया।

यादव वंश— यदु अपने सब भाइयों में प्रतापी निकला। उसके वंशज 'यादव' नाम से प्रसिद्ध हुए। महाभारत के अनुसार यदु से यादव, तुर्वसु से यवन, द्रुह्यु से भोज तथा अनु से म्लेच्छ जातियों का आविर्भाव हुआ (१२)।

यादवों ने कालांतर में अपने केन्द्र दशार्ण, अवन्ती, विदर्भ, और माहिष्मती में स्थापित कर लिये। भीम सात्वत के समय में मथुरा और द्वारका यादव-शक्ति के महत्वपूर्ण केन्द्र बने। इनके अतिरिक्त शाल्व देश (वर्तमान आबू तथा उसके पड़ोस का प्रदेश) में भी यादवों की एक शाखा जम गयी, जिसकी राजधानी पर्णाश नदी (आधुनिक बनास) के तट पर स्थित मार्तिकावत हुई।

अन्य राजवंशों के साथ यादवों की कशमकश बहुत समय तक चलती रही। पुरूरवा के पौत्र तथा आयु के पुत्र क्षत्रवृद्ध के द्वारा काशी में एक नये राज्य की स्थापना की गयी थी। दक्षिण के हैहयवंशी यादवों तथा काशी एवं अयोध्या के राजवंशों में बहुत समय तक युद्ध चलते रहे। हैहय लोगों ने अपने आक्रमण सूर्यवंशी राजा सगर के समय तक जारी रक्खे। इन हैहयों में सब से प्रतापी राजा कृतवीर्य का पुत्र कार्तवीर्य अर्जुन हुआ, जिसने नर्मदा से लेकर हिमालय की तलहटी तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया।

हैहयों की उत्तर की ओर बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिए राजा प्रतर्दन के बेटे वत्स ने प्रयाग के समीप 'वत्स' राज्य की स्थापना की। इस राज्य की शक्ति कुछ समय बाद बहुत बढ़ गयी, जिससे दक्षिण की ओर से होने वाले आक्रमणों का वेग कम पड़ गया।

पुरुवंश की लगभग तैंतालीसवीं पीढ़ी में राजा दुष्यंत हुए, जिन्होंने कण्व ऋषि की पोषिता कन्या शकुन्तला के साथ गंधर्व विवाह किया। शकुन्तला से उत्पन्न भरत बड़े प्रतापी शासक हुए। उनके वंशज भरतवंशी कहलाये। इस वंश के एक राजा ने गंगा-यमुना दोआब के उत्तरी भाग पर अपना आधिपत्य जमाया। यह प्रदेश कालांतर में भरतवंशी राजा भ्रम्यश्व के पांच पुत्रों के नाम पर 'पंचाल' कहलाया। भ्रम्यश्व के एक पुत्र का नाम मुद्गल था, जिसके पुत्र वध्र्यश्व तथा पौत्र दिवोदास के समय पंचाल राज्य का विस्तार बहुत बढ़ गया। दिवोदास के बाद मित्रायु, मैत्रेय, सोम, सृंजय और च्यवन इस वंश के क्रमशः शासक हुए। च्यवन तथा उसके पुत्र सुदास के समय मे पंचाल जनपद की सर्वतोमुखी उन्नति हुई। सुदास ने उत्तर-पश्चिम की ओर अपने राज्य की सीमा बहुत बढ़ा ली (१३)। पूर्व में इसका राज्य अयोध्या की सीमा तक जा लगा। सुदास ने हस्तिनापुर के तत्कालीन पौरव शासक संवरण को मार भगाया। इस पर संवरण ने अनेक राजाओं से सहायता ली और

---

(१२) "यदोस्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवना : सुता :।
द्रुह्योरपि सुता भोजा अनोस्तु म्लेच्छजातय: ।"
(महाभा०, १,८०,२६)

(१३) दे० अग्नि पु० २७७,२०; गरुड़ पु० १,१४० ६ आदि।

सुदास के विरोध में एक बड़ा दल तैयार कर लिया। इस दल में पुरुओं के अतिरिक्त द्रुह्यु, मत्स्य, तुर्वसु, यदु, अलिन, पक्थ, भलनस, विषाणी और शिवि थे (१४)। दूसरी ओर केवल राजा सुदास था। उसने परुष्णी नदी (रावी) के तट पर इस सम्मिलित सैन्यदल को परास्त कर अतुल शौर्य का परिचय दिया। संवरण को वाध्य होकर सिंधु नदी के किनारे एक दुर्ग में शरण लेनी पड़ी।

कुछ समय बाद संवरण ने अपने राज्य को पुनः प्राप्त किया। उसका पुत्र कुरु प्रतापी राजा हुआ। उसने दक्षिण पंचाल को भी जीता और अपने राज्य का विस्तार प्रयाग तक किया। कुरु के नाम से सरस्वती नदी के आस-पास का प्रदेश 'कुरुक्षेत्र' कहलाया।

प्रश्न है कि उपर्युक्त दाशराज्ञ युद्ध के समय यादवों की मुख्य शाखा का राजा कौन था। पौराणिक वंश-परम्परा का अवलोकन करने पर पता चलता है कि पंचाल राजा सुदास का समकालीन भीम सात्वत यादव का पुत्र अंधक रहा होगा। इस अंधक के विषय में मिलता है कि वह शूरसेन जनपद के तत्कालीन गणराज्य का अध्यक्ष था। संभवतः अंधक अपने पिता भीम के समान वीर न था। दासराज्ञ युद्ध से पता चलता है कि अन्य नौ राजाओं के साथ वह भी सुदास से पराजित हुआ।

यदु से भीम सात्वत तक का वंश--अब हम यदु से लेकर भीम सात्वत तक की यादव वंशावली पर विचार करेंगे। विभिन्न पुराणों में यदुवंश की इस मुख्य शाखा के नामों में अनेक जगह विपर्यय मिलते हैं। पार्जीटर ने पुराणों के आधार पर जो वंश-तालिका दी है (१५), उसे देखने पर पता चलता है कि यदु के बाद उसका पुत्र क्रोष्टु या कोष्टि प्रधान यादव शाखा का अधिकारी हुआ (१६)। उसके जिन वंशजों के नाम मिलते हैं वे ये हैं---स्वाहि, रुशद्गु, चित्ररथ और शशबिंदु। शशबिंदु प्रतापी शासक हुआ। उसने द्रुह्यु लोगों को हराकर उन्हें उत्तर-पश्चिम की ओर पंजाब में भगा दिया, जहां उन्होंने कालांतर में गांधार राज्य की स्थापना की। शशबिंदु ने पुरुओं को भी पराजित कर उन्हें उत्तर-पश्चिम की ओर जाने के लिए विवश किया। इन विजयों में शशबिंदु को अपने समकालीन अयोध्या नरेश मांधाता से बड़ी सहायता मिली। मांधाता इक्ष्वाकु वंश में प्रसिद्ध राजा हुआ। उससे अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने के लिए शशबिंदु ने अपनी पुत्री बिंदुमती का विवाह उसके साथ कर दिया। मांधाता ने कान्यकुब्ज प्रदेश को जीता और आनवों को भी पराजय दी।

शशबिंदु से लेकर भीम सात्वत तक यादवों की मुख्य शाखा के जिन राजाओं के नाम मिलते हैं वे ये हैं---पृथुश्रवस, अंतर, सुयज्ञा, उशनस, शिनेयु, मरुत्त, कम्बलबर्हिस, रुक्म-कवच, परावृत, ज्यामघ, विदर्भ, क्रथभीम, कुन्ति, धृष्ठ, निर्वृति, विदूरथ, दशार्ह, व्योमन, जीमूत, विकृति, भीमरथ, रथवर, दशरथ, एकदशरथ, शकुनि, करम्भ, देवरात, देवक्षेत्र, देवन, मधु, पुरुवश, पुरुद्वंत, जंतु या अम्शु, सत्वंत और भीम सात्वत।

उक्त सूची में यदु और मधु के बीच में होने वाले राजाओं में से किस-किस ने यमुना तटवर्ती प्रदेश पर (जो बाद में शूरसेन कहलाया) राज्य किया, यह बताना कठिन है। पुराणादि में इस सम्बन्ध में निश्चित कथन नहीं मिलते। पुराणों में कतिपय राजाओं के विषय में यत्र-तत्र कुछ वर्णन अवश्य मिलते हैं पर वे प्रायः अधूरे हैं। जैसे उशनस के सम्बन्ध में आया है कि उसने एक सौ अश्वमेध यज्ञ किये। क्रथभीम को विदर्भ का शासक लिखा है। उसके भाई कौशिक से यादवों के चेदिवंश का आरम्भ हुआ। क्रथभीम के बाद विदर्भ का प्रसिद्ध यादव शासक भीमरथ हुआ, जिसकी पुत्री दमयंती निषधराज नल को ब्याही गयी।

---

(१४) ऋग्वेद (७,१८; १९; ६,६१-२) में इस दासराज्ञ युद्ध का उल्लेख मिलता है।

(१५) पार्जीटर---ऐंश्यंट इंडियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन, पृ० १०५-१०७।

(१६) यदु के दूसरे पुत्र सहस्रजित् से हैहयवंश का आरम्भ हुआ, जिसकी कालांतर में कई शाखाएं हुई।

मधु और लवण—यादवों में मधु एक प्रतापी शासक माना जाता है। यह चंद्रवंश की ६१ वीं पीढ़ी (ज्ञात नामों के अनुसार ४४ वीं पीढ़ी) में हुआ। वह इक्ष्वाकु वंशी राजा दिलीप द्वितीय अथवा उसके उत्तराधिकारी दीर्घबाहु का समकालीन था। कुछ पुराणों के अनुसार मधु गुजरात से लेकर यमुना-तट तक के बड़े भू-भाग का स्वामी था। संभवतः इस मधु ने अनेक स्थानों में बिखरे हुए यादव राज्यों को सुसंगठित किया। पुराणों, वाल्मीकि रामायण आदि में मधु के सम्बन्ध में जो विभिन्न वर्णन मिलते हैं, उनसे बड़ी भ्रांति पैदा हो गयी है। प्रायः मधु के साथ 'असुर', 'दैत्य', 'दानव' आदि विशेषण मिलते हैं (१७)। साथ ही अनेक पौराणिक वर्णनों में यह भी आया है कि मधु बड़ा धार्मिक एवं न्यायप्रिय शासक था। उसके पुत्र का नाम लवण दिया है। लवण को अत्याचारी कहा गया है। इसी लवण को मार कर अयोध्या-नरेश श्रीराम के भाई शत्रुघ्न ने उसके प्रदेश पर अपना अधिकार जमाया।

पुराणों तथा वाल्मीकि रामायण में मधु और लवण की कथा विस्तार से दी हुई है। उसके अनुसार मधु के नाम पर मधुपुर या मधुपुरी नगर यमुना तट पर बसाया गया (१८)। मधु को लोला नामक असुर का ज्येष्ठ पुत्र लिखा है। उसे बड़ा धर्मात्मा, बुद्धिमान और परोपकारी कहा गया है। मधु ने शिव की तपस्या कर उनसे एक अमोघ त्रिशूल प्राप्त किया। मधु की स्त्री का नाम कुंभीनसी था, जिससे लवण का जन्म हुआ। लवण बड़ा होने पर लोगों को अनेक प्रकार से कष्ट पहुंचाने लगा। इससे दुखी होकर कुछ ऋषियों ने अयोध्या जाकर श्रीराम से सब बातें बतायीं और उनसे प्रार्थना की कि लवण के अत्याचारों से लोगों को शीघ्र छुटकारा दिलाया जाय। अन्त में श्रीराम ने शत्रुघ्न को मधुपुर जाने की आज्ञा दी। शत्रुघ्न संभवतः प्रयाग के मार्ग से नदी के किनारे-किनारे चलकर मधुवन पहुंचे और वहां उन्होंने लवण का संहार किया (१९)।

चन्द्रवंश की ६१ वीं पीढ़ी में हुआ उक्त मधु तथा लवण-पिता मधु एक ही थे अथवा नहीं, यह विवादास्पद है। पुराणों आदि की तालिका में पूर्वोक्त मधु के पिता का नाम देवन तथा पुत्र का नाम पुरुवश दिया है और इस मधु को अयोध्यानरेश रघु के पूर्ववर्ती दीर्घबाहु का समकालीन दिखाया गया है, न कि राम या दशरथ का। इससे तथा पुराणों के हर्यश्व-मधुमती उपाख्यान (२०) से भासित होता है कि संभवतः यदुवंशी मधु तथा लवण-पिता मधु एक व्यक्ति न थे। इसमें संदेह नहीं कि लवण एक शक्तिशाली शासक था। हरिवंश से पता चलता है कि लवण ने राम के पास युद्ध का संदेश लेकर अपना दूत भेजा और उसके द्वारा कहलाया कि "हे राम

---

(१७) हरिवंश १,५४,२२, विष्णु पु० १,१२,३ आदि। इसका एक कारण यह कहा जा सकता है कि पुराणकारों आदि ने भ्रमवश मधुकैटभ दैत्य और उक्त मधु को एक समझ लिया।

(१८) यही नगर बाद में 'मथुरा' या 'मधुरा' हुआ।

(१९) रामायण, उत्तरकांड, सर्ग ६१—६९।

(२०) इस उपाख्यान के अनुसार अयोध्या के इक्ष्वाकु-वंशी हर्यश्व ने मधु दैत्य की पुत्री मधुमती से विवाह किया। अपने भाई के द्वारा बहिष्कृत किये जाने पर हर्यश्व सपत्नीक अपने श्वसुर मधु के पास मधुपुर चले आये। मधु ने हर्यश्व का स्वागत कर उनसे उस प्रदेश पर शासन करने को कहा और यह भी कहा कि लवण उनकी सब प्रकार से सहायता करेगा। मधु ने हर्यश्व से फिर कहा—"तुम्हारा वंश कालांतर में ययाति वाले यदुवंश के साथ घुल-मिल जायगा और तुम्हारी संतति चन्द्रवंश की एक शाखा हो जायगी"—

"यायातमपि वंशस्ते समेष्यति च यादवम्।
अनुवंशं च वंशस्ते सोमस्य भविता किल॥" (हरि० २,३७,३४)

इसके बाद हर्यश्व के द्वारा राज्य-विस्तार करने तथा उनके द्वारा गिरि पर एक नगर (संभवतः गोवर्द्धन) बसाने का उल्लेख है और उनके शासन की प्रशंसा है।

तुम्हारे राज्य के निकट ही मैं तुम्हारा शत्रु हूं। मुझ-जैसा राजा तुम्हारे सदृश बलदृप्त 'सामंत' को नहीं देख सकता"(२१)। लवण ने यह भी कहलाया कि रावणादि का वध करके राम ने अच्छा काम नहीं किया, बल्कि एक बड़ा कुत्सित कर्म किया है, आदि।

इस वर्णन से प्रतीत होता है कि लवण ने अपने राज्य का काफी विस्तार कर लिया था। इस कार्य में उसे अपने बहनोई हर्यश्व से भी सहायता मिली होगी। शायद लवण ने अपने राज्य की पूर्वी सीमा बढ़ाकर गंगा नदी तक कर ली थी और इसीलिए राम को कहलाया था कि "मैं तुम्हारे राज्य के निकट ही शत्रु हूं।" लवण की दर्पोक्ति तथा राम के प्रति उसकी खुली चुनौती से प्रकट होता है कि इस समय लवण की शक्ति प्रबल हो गयी थी। अन्यथा उन राम से, जिन्होंने कुछ ही समय पूर्व रावण-जैसे दुर्दांत शत्रु का संहार कर अपने शौर्य की धाक जमा दी थी, युद्ध मोल लेना हंसी-खेल न था। लवण के द्वारा रावण की सराहना तथा राम की निंदा इस बात का सूचक है कि रावण की गर्हित नीति और कार्य उसे पसन्द थे। इससे अनुमान होता है कि लवण और उसका पिता मधु संभवतः किसी अनार्य शाखा के थे। हो सकता है कि ये दोनों शक्तिशाली यक्ष रहे हों। इस अनुमान की पुष्टि के लिए अभी अवश्य ही अधिक पुष्ट प्रमाणों की आवश्यकता है। मधु की नगरी मधुपुरी के जो वर्णन प्राचीन साहित्य में मिलते हैं उनसे ज्ञात होता है कि उस नगरी का स्थापत्य उच्चकोटि का था। शत्रुघ्न भी उस रम्य पुरी को देख कर चकित हो गये और अनुमान करने लगे कि वह देवों के द्वारा निर्मित हुई होगी। प्राचीन वैदिक साहित्य में असुरों के विशाल तथा दृढ़ किलों एवं मकानों के अनेक उल्लेख मिलते हैं। संभव है कि लवण-पिता मधु या उसके किसी पूर्वज ने यमुना के तटवर्ती प्रदेश पर अधिकार कर लिया हो। जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह अधिकार लवण के समय से समाप्त हो गया।

सूर्यवंश का आधिपत्य—शत्रुघ्न और लवण का युद्ध महत्व का है। इस युद्ध में शत्रुघ्न एक बड़ी सेना लेकर मधुवन पहुंचे होंगे। उनकी यह विजय-यात्रा संभवतः प्रयाग होकर यमुना नदी के किनारे के मार्ग से हुई होगी। लवण ने उनका मुकाबला किया, परन्तु वह परास्त हुआ और मारा गया। शायद हर्यश्व भी इस युद्ध में समाप्त कर दिया गया। लवण के पिता मधु की मृत्यु इस युद्ध के पहले ही हो चुकी थी। इस विजय से अयोध्या के ऐक्ष्वाकुओं की धाक सुदूर यमुना-तटवर्ती प्रदेश तक जम गयी। रावण के वध से उनका यश पहले ही दक्षिण में फैल चुका था। अब पश्चिम की विजय से वे बड़े शक्तिशाली गिने जाने लगे और उनसे लोहा लेने वाला कोई न रहा।

शत्रुघ्न ने कुछ समय तक नये प्रदेश में निवास कर उसकी व्यवस्था ठीक की। यहां से जाते समय उन्होंने अपने पुत्र सुबाहु को इस नये 'शूरसेन' जनपद का स्वामी नियुक्त किया (२२)।

---

(२१) "विषयासन्नभूतोऽस्मि तव राम रिपुश्च ह।
न च सामन्तमिच्छन्ति राजानो बलदर्पितम्॥" (हरि० १,५४,२८)

(२२) कहीं-कहीं शत्रुघ्न द्वारा जनपद पर सुबाहु के स्थान पर दूसरे पुत्र शूरसेन के नियुक्त करने का उल्लेख मिलता है। उदाहरणार्थ देखिए कालिदास—

"शत्रुघातिनि शत्रुघ्नः सुबाहौ च बहुश्रुते।
मधुराविदिशे सून्वोर्निदधे पूर्वजोत्सुकः॥" (रघुवंश, १५, ३६)

हो सकता है कि पहले सुबाहु कुछ दिन शूरसेन जनपद का शासक रहा हो और उसके यहां से चले जाने पर शूरसेन वहां का स्वामी बना हो। इसी शूरसेन के नाम पर जनपद का नामकरण होने की चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

लवण का वध करने के पश्चात् शत्रुघ्न ने जंगल (मधुवन) को साफ़ करवाया और मथुरा नामक पुरी को बसाया (२३)। इस प्रकार उस घने जंगल के कट जाने तथा पुरी का संस्कार हो जाने से नगर एवं जनपद की शोभा बहुत बढ़ गयी (२४)।

ऐसा प्रतीत होता है कि मधुवन और मधुपुरी में निवास करने वाले लवण के अधिकांश अनुयायियों को शत्रुघ्न ने समाप्त कर दिया। शेष भयभीत होकर अन्यत्र चले गये होंगे। तभी शत्रुघ्न ने उस पुरी को ठीक प्रकार से बसाने की बात सोची होगी। संभवतः उन्होंने पुरानी नगरी (मधुपुरी) को नष्ट नहीं किया। उन्होंने उससे दूर एक नई बस्ती बसाने की भी कोई आवश्यकता न समझी होगी। प्राचीन पौराणिक उल्लेखों तथा रामायण के वर्णन से यह प्रकट होता है कि उन्होंने जंगल को साफ़ करवाया तथा प्राचीन मधुपुरी को एक नये ढंग से आबाद कर उसे सुशोभित किया। रामायण में देवों से वर मांगते हुए शत्रुघ्न कहते हैं—

"हे देवगण, मुझे वरदान दीजिए कि यह सुन्दर मधुपुरी या मथुरा नगरी, जो ऐसी लगती है मानों देवताओं द्वारा बनायी गयी हो, शीघ्र ही बस जाय।" (२५) देवताओं ने 'एवमस्तु' कहा और कुछ समय बाद पुरी आबाद हो गयी। बारह वर्ष के अनन्तर इस मथुरा नगरी तथा इसके आस-पास के प्रदेश की काया ही पलट गयी।

यादव वंश का पुनः अधिकार—पौराणिक अनुश्रुति से ज्ञात होता है कि शत्रुघ्न की मृत्यु के बाद यादव-वंशी सत्वान् या सत्वंत के पुत्र भीम सात्वत ने मथुरा नगरी तथा उसके आस-पास के प्रदेश पर अधिकार कर लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि हर्यश्व और मधुमती की संतति का संबंध भीम सात्वत और उसके वंशजों के साथ रहा। सम्भवतः इसीलिए हरिवंश में कहा गया है कि हर्यश्व का वंश यदुवंश के साथ घुलमिल जायगा।

भीम सात्वत के पुत्र अंधक और वृष्णि थे। इन दोनों के वंश बहुत प्रसिद्ध हुए। अंधक का वंश मथुरा प्रदेश का अधिकारी हुआ और वृष्णि के वंशज द्वारका के शासक हुए। महाभारत युद्ध के पूर्व मथुरा के शासक उग्रसेन थे, जिनका उत्तराधिकारी उनका पुत्र कंस हुआ। द्वारका के वृष्णि वंश में उस समय शूर के पुत्र वसुदेव थे। उग्रसेन के भाई देवक के सात पुत्रियां थीं, जिनमें देवकी सब से बड़ी थी। इन सातों का विवाह वसुदेव के साथ हुआ। वसुदेव को देवकी से कृष्ण पैदा हुए। वसुदेव की बहन कुन्ती राजा पांडु को ब्याही गयी, जिससे युधिष्ठिर आदि पांच पांडवों का जन्म हुआ।

अंधक और वृष्णि द्वारा परिचालित राज्य गणराज्य थे, अर्थात् इनका शासन किसी एक राजा के द्वारा न होकर जनता के चुने हुए व्यक्तियों द्वारा होता था। ये व्यक्ति अपने में से एक प्रधान चुन लेते थे, जो 'गण मुख्य' कहलाता था। कहीं-कहीं इसे 'राजा' भी कहते थे, पर नृपतन्त्र वाले स्वेच्छाचारी राजा से वह भिन्न होता था। महाभारत के समय अंधक और वृष्णि राज्यों ने मिल कर अपना एक

---

(२३) "हत्वा च लवणं रक्षो मधुपुत्रं महाबलम्।
शत्रुघ्नो मधुरां नाम पुरीं यत्र चकार वै।"
(विष्णु पु० १, १२, ४)

(२४) "छित्वा वनं तत्सौमित्रिः निवेशंसोऽभ्यरोचयत्।
भवाय तस्य देशस्य पुर्याः परमधर्मवित्॥"
(हरिवंश १, ५४, ५५)

(२५) "इयं मधुपुरी रम्या मधुरा देवनिर्मिता।
निवेशं प्राप्नुयाच्छीघ्रमेष मेऽस्तु वरः परः॥"
(रामा० उत्तर०, ७०, ५)

संघ बना लिया था। इस संघ के दो मुखिया चुने गये—अंधकों के प्रतिनिधि उग्रसेन और वृष्णियों के कृष्ण। संघ की व्यवस्था बहुत समय तक सफलता के साथ चलती रही और उसके शासन से प्रजा सन्तुष्ट रही।

प्राचीन मथुरा का वर्णन—शत्रुघ्न के समय में और उसके बाद मधुरा या मथुरा नगरी के आकार और विस्तार का सम्यक् पता नहीं चलता। प्राचीन पौराणिक वर्णनों से इस सम्बन्ध में किंचित् जानकारी प्राप्त होती है।

हरिवंश से ज्ञात होता है कि पुरानी नगरी यमुना नदी के तट पर बसी हुई थी और उसका आकार अष्टमी के चन्द्रमा-जैसा था। उसके चारों ओर नगर-दीवाल थी, जिसमें ऊंचे तोरण-द्वार थे। दीवाल के बाहर खाई बनी हुई थी। नगरी धन-धान्य और समृद्धि से पूर्ण थी। उसमें अनेक उद्यान और वन थे। पुरी की स्थिति सब प्रकार से मनोज्ञ थी। मकान अट्टालिकाओं और सुन्दर द्वारों से युक्त थे। उनमें विविध वस्त्राभूषणों से अलंकृत स्त्री-पुरुष निवास करते थे। ये लोग राग-रहित और वीर थे। उनके पास बहुसंख्यक हाथी, घोड़े और रथ थे। नगर के बाजारों में सभी प्रकार का क्रय-विक्रय होता था और रत्नों के ढेर विद्यमान थे। मथुरा की भूमि बड़ी उपजाऊ थी और समय पर वर्षा होती थी। मथुरा नगरी के रहने वाले सभी स्त्री-पुरुष प्रसन्न-चित्त दिखाई पड़ते थे (२६)।

यमुना नदी का प्रवाह प्राचीन काल से बदलता आया है। मधु और शत्रुघ्न के समय में यमुना की धारा उस स्थान के पास से बहती रही होगी जिसे अब महोली कहते हैं। वर्तमान मथुरा नगरी और महोली के बीच में बहुत से पुराने टीले दिखाई पड़ते हैं। इन टीलों से विविध प्राचीन अवशेष बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं, जिनसे इस बात की पुष्टि होती है कि इधर पुरानी बस्ती थी। इस भू-भाग की व्यवस्थित खुदाई होने पर सम्भवतः इस बात का पता चल सकेगा कि विभिन्न कालों में मथुरा की बस्ती में क्या-क्या परिवर्तन हुए।

वराह पुराण (अध्याय १६५, २१) से ज्ञात होता है कि किसी समय मथुरा नगरी गोवर्धन पर्वत और यमुना नदी के बीच बसी हुई थी और इनके बीच की दूरी अधिक नहीं थी। वर्तमान स्थिति ऐसी नहीं है, क्योंकि अब गोवर्धन यमुना से काफी दूर है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय गोवर्धन और यमुना के बीच इतनी दूरी न रही होगी जितनी कि आज है। हरिवंश पुराण में भी कुछ इस प्रकार का संकेत प्राप्त होता है। (२७)

---

(२६) "सा पुरी परमोदारा साट्टप्राकारतोरणा।
स्फीता राष्ट्रसमाकीर्णा समृद्धबलवाहना॥ ५७॥
उद्यानवनसंपन्ना सुसीमा सुप्रतिष्ठिता।
प्रांशुप्राकारवसना परिखाकुलमेखला॥ ५८॥
चलाट्टालककेयूरा प्रासादवरकुण्डला।
सुसंवृतद्वारवती चत्वरोद्गारहासिनी॥ ५९॥
अरोगवीरपुरुषा हस्त्यश्वरथसंकुला।
अर्द्धचन्द्रप्रतीकाशा यमुनातीरशोभिता॥ ६०॥
पुण्यापणवती दुर्गा रत्नसंचयगर्विता।
क्षेत्राणि सस्यवंत्यस्याः काले देवश्च वर्षति॥ ६१॥
नरनारी प्रमुदिता सा पुरी स्म प्रकाशते।"
हरिवंश पुराण (पर्व १, अ० ५४)

(२७) "गिरिर्गोवर्धनो नाम मथुरायास्त्वदूरतः।" हरिवंश, (१,५५,३६)

अध्याय ३

श्रीकृष्ण और उनका समय

ब्रज या शूरसेन जनपद के इतिहास में श्रीकृष्ण का समय बड़े महत्व का है। इसी समय प्रजातंत्र और नृपतंत्र के बीच कठोर संघर्ष हुए, मगध–राज्य की शक्ति का विस्तार हुआ और भारत का वह महा-भीषण संग्राम हुआ, जिसे महाभारत युद्ध कहते हैं। इन राजनैतिक हलचलों के अतिरिक्त इस काल का सांस्कृतिक महत्व भी है। श्रीकृष्ण साधारण व्यक्ति न होकर युगपुरुष थे। उनके व्यक्तित्व में भारत को एक प्रतिभासम्पन्न राजनेता ही नहीं, एक महान् कर्मयोगी और दार्शनिक प्राप्त हुआ, जिसका गीता-ज्ञान समस्त मानव-जाति एवं सभी देश-काल के लिए पथ-प्रदर्शक है।

मथुरा नगरी इस महान् विभूति का जन्म-स्थान होने के कारण धन्य हो गई। मथुरा ही नहीं, सारा शूरसेन या ब्रज जनपद आनंदकंद कृष्ण की मनोहर लीलाओं की क्रीड़ा-भूमि होने के कारण गौर-वान्वित हो गया। श्रीकृष्ण भागवत धर्म के महान् स्रोत हुए। इस धर्म ने कोटि-कोटि भारतीय जन का अनुरंजन तो किया ही, उसके द्वारा कितने ही विदेशी भी प्रभावित हुए। प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य का एक बड़ा भाग कृष्ण की मनोहर लीलाओं से ओतप्रोत है। उनके लोक-रंजक रूप ने भारतीय जनता के मानस पर जो छाप लगा दी है वह अमिट है।

वर्तमान ऐतिहासिक अनुसंधानों के आधार पर श्रीकृष्ण का जन्म लगभग ई० पू० १५०० माना जाता है। वे सम्भवतः १०० वर्ष से कुछ ऊपर की आयु तक जीवित रहे। अपने इस दीर्घ जीवन में उन्हें विविध प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहना पड़ा। उनका प्रारम्भिक जीवन तो ब्रज में कटा और शेष द्वारका में व्यतीत हुआ। बीच-बीच में उन्हें अन्य अनेक जनपदों में भी जाना पड़ा। जो अनेक घटनाएं उनके समय में घटीं उनकी विस्तृत चर्चा पुराणों तथा महाभारत में मिलती हैं। वैदिक साहित्य में तो कृष्ण का उल्लेख बहुत कम मिलता है और उसमें उन्हें मानव-रूप में ही दिखाया गया है, न कि नारायण या विष्णु के अवतार-रूप में (२८)। परन्तु परवर्ती साहित्य में प्रायः उन्हें देव या विष्णु रूप में प्रदर्शित करने का भाव मिलता है। (२९)

कंस का शासन—श्रीकृष्ण के जन्म के पहले शूरसेन जनपद का शासक कंस था, जो अंधक वंशी उग्रसेन का पुत्र था। बचपन से ही कंस स्वेच्छाचारी था। बड़ा होने पर वह जनता को अधिक कष्ट पहुंचाने लगा। उसे गणतंत्र की परंपरा रुचिकर न थी और शूरसेन जनपद में वह स्वेच्छाचारी नृपतंत्र स्थापित करना चाहता था। उसने अपनी शक्ति बढ़ाकर उग्रसेन को पदच्युत कर दिया और स्वयं मथुरा के यादवों का अधिपति बन गया। इससे जनता के एक बड़े भाग का क्षुभित होना स्वाभाविक था। परतु कंस की अनीति यहीं तक सीमित नहीं रही, वह शीघ्र ही मथुरा का निरंकुश शासक

---

(२८) द्र० छांदोग्य उपनिषद् (३, १७, ६), जिसमें देवकीपुत्र कृष्ण का उल्लेख है और उन्हें घोर आंगिरस का शिष्य कहा गया है।

(२९) उदाहरणार्थ तैत्तिरीय आरण्यक (१०, १, ६), पाणिनीय अष्टाध्यायी (४, ३, ९८) आदि। महाभारत तथा हरिवंश, विष्णु, ब्रह्म, वायु, भागवत, पद्म, देवीभागवत, अग्नि तथा ब्रह्मवैवर्त पुराणों में श्रीकृष्ण को प्रायः भगवान् रूप में दिखाया गया है। तो भी इन ग्रन्थों में कृष्ण के मानव-रूप के दर्शन अनेक स्थलों पर मिलते हैं।

बन गया और प्रजा को अनेक प्रकार से पीड़ित करने लगा। इससे प्रजा में कंस के प्रति गहरा असंतोष फैल गया। पर कंस की शक्ति इतनी प्रबल थी और उसका आतंक इतना छाया हुआ था कि बहुत समय तक जनता उसके अत्याचारों को सहती रही और उसके विरुद्ध कुछ कर सकने में असमर्थ रही।

कंस की इस शक्ति का प्रधान कारण यह था कि उसे आर्यावर्त के तत्कालीन सर्वप्रतापी राजा जरासंध का सहारा प्राप्त था। यह जरासंध पौरव वंश का था और मगध के विशाल साम्राज्य का शासक था। उसने अनेक प्रदेशों के राजाओं से मैत्री-संबंध स्थापित कर लिये थे, जिनके द्वारा उसे अपनी शक्ति बढ़ाने में बड़ी सहायता मिली। कंस को जरासंध ने अस्ति और प्राप्ति नामक अपनी दो लड़कियां ब्याह दीं और इस प्रकार उससे अपना घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ लिया। चेदि के यादव वंशी राजा शिशुपाल को भी जरासंध ने अपना गहरा मित्र बना लिया। इधर उत्तर-पश्चिम में उसने कुरुराज दुर्योधन को अपना सहायक बनाया। पूर्वोत्तर की ओर आसाम के राजा भगदत्त से भी उसने मित्रता जोड़ी। इस प्रकार उत्तर भारत के प्रधान राजाओं से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर जरासंध ने अपने पड़ोसी राज्यों--काशी, कोशल, अंग, बंग आदि--पर अपना अधिकार जमा लिया। कुछ समय बाद कलिंग का राज्य भी उसके अधीन हो गया। अब जरासंध पंजाब से लेकर आसाम और उड़ीसा तक के प्रदेश का सबसे अधिक प्रभावशाली शासक बन गया।

श्रीकृष्ण ने बड़े होने पर कंस को समाप्त कर उसके अत्याचारों से मथुरा को मुक्त किया। अपने जामातृ और सहायक का कृष्ण द्वारा वध सुन कर जरासंध का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। उसने शूरसेन जनपद पर चढ़ाई करने का पक्का विचार कर लिया। शूरसेन और मगध के बीच युद्ध का विशेष महत्व ह, इसीलिए हरिवंश आदि पुराणों में इसका वर्णन विस्तार से मिलता है।

जरासन्ध की मथुरा पर चढ़ाई—जरासंध ने पूरे दल-बल के साथ शूरसेन जनपद पर चढ़ाई की। पौराणिक वर्णनों के अनुसार उसके सहायक कारूष का राजा दंतवक्र, चेदिराज शिशुपाल, कलिंगपति पौंड्र, भीष्मक-पुत्र रुक्मी, काथ अंशुमान तथा अंग, बंग, कोशल, दशार्ण, मद्र, त्रिगर्त आदि के राजा थे। इनके अतिरिक्त शाल्वराज, पवनदेश का राजा भगदत्त, सौवीरराज, गंधार का राजा सुबल नग्नजित, काश्मीर का राजा गोनर्द, दरद देश का राजा तथा कौरवराज दुर्योधन आदि भी उसके सहायक थे। मगध की विशाल सेना ने मथुरा पहुंच कर नगर के चारों फाटकों को घेर लिया। सत्ताईस दिनों तक जरासंध मथुरा नगर को घेरे पड़ा रहा, पर वह मथुरा का अभेद्य दुर्ग न जीत सका। संभवतः समय से पहले ही खाद्य-सामग्री के समाप्त हो जाने के कारण उसे निराश होकर मगध लौटना पड़ा।

दूसरी बार जरासंध पूरी तैयारी से शूरसेन पहुंचा। यादवों ने अपनी सेना इधर-उधर फैला दी। युवक बलराम ने जरासंध का अच्छा मुकाबला किया। लुका-छिपी के युद्ध द्वारा यादवों ने मगध-सैन्य को बहुत छकाया। श्रीकृष्ण जानते थे कि यादव सेना की संख्या तथा शक्ति सीमित है और वह मगध की विशाल सेना का खुलकर सामना नहीं कर सकती। इसीलिए उन्होंने लुका-छिपी वाला आक्रमण ही उचित समझा। इसका फल यह हुआ कि जरासंध परेशान हो गया और हताश होकर ससैन्य लौट पड़ा। इस युद्ध में संभवतः कारूष की सेना तथा चेदि-सेना कुछ कारणों से जरासंध से अलग होकर यादवों से मिल गयी थी।

पुराणों के अनुसार जरासंध ने अठारह बार मथुरा पर चढ़ाई की। सत्रह बार वह असफल रहा। अंतिम चढ़ाई में उसने एक विदेशी शक्तिशाली शासक कालयवन को भी मथुरा पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। कृष्ण-बलदेव को जब यह ज्ञात हुआ कि जरासंध और कालयवन विशाल फौज लेकर आ रहे हैं तब उन्होंने मथुरा छोड़ कर कहीं अन्यत्र चले जाना ही श्रेयस्कर समझा। वे उग्रसेन, बलराम तथा अन्य बहुसंख्यक यादवों को लेकर सौराष्ट्र की नगरी द्वारावती (द्वारका) में

चले गये और वहीं बस गये। शूरसेन जनपद पर जरासंध का आधिपत्य अधिक दिन तक नहीं रहा। कुछ समय बाद पांडवों की सहायता से कृष्ण ने जरासंध का वध करा दिया। जरासंध जैसे महा-पराक्रमी और क्रूर शासक का अंत कर देने से श्रीकृष्ण का यश चारों ओर फैल गया।

पांडवों ने अब श्रीकृष्ण की सलाह से राजसूय यज्ञ की तैयारी की। उन्होंने भारत के अनेक राज्यों को जीतकर अपना प्रभुत्व बढ़ाया। शूरसेन जनपद तथा उसके आस-पास के राज्यों को सहदेव ने विजित किया। राजसूय यज्ञ बड़े समारोह के साथ संपन्न हुआ। चेदि का यादव नरेश शिशुपाल, जो जरासंध का बड़ा मित्र था, इस यज्ञ में कृष्ण द्वारा समाप्त कर दिया गया।

महाभारत युद्ध—कौरव-पांडवों के घरेलू झगड़ों ने जब बड़ा विषम रूप धारण कर लिया और कृष्ण आदि की समझौते की चेष्टाएं विफल हो गयीं, तब एक भीषण युद्ध का होना अनिवार्य हो गया। इस युद्धाग्नि में इच्छा या अनिच्छा से आहुति देने को प्रायः सारे भारत के शासक शामिल हुए। पांडवों की ओर मत्स्य, पंचाल, चेदि, कारुष, पश्चिमी मगध, काशी और कोशल के राजा हुए। सौराष्ट्र-गुजरात के वृष्णि यादव भी पांडवों के पक्ष में रहे। कृष्ण, युयुधान और सात्यकि इन यादवों के प्रमुख नेता थे। बलराम यद्यपि कौरवों के पक्षपाती थे, तो भी उन्होंने कौरव-पांडव युद्ध में भाग लेना उचित न समझा और वे तीर्थ-पर्यटन के लिए चले गये। कौरवों की ओर शूरसेन प्रदेश के यादव तथा माहिष्मती, अवंति, विदर्भ और निषद देश के यादव थे। इनके अतिरिक्त पूर्व में बंगाल, आसाम, उड़ीसा तथा उत्तर-पश्चिम एवं पश्चिम भारत के सारे राजा और वत्स देश के शासक कौरवों की ओर रहे। इस प्रकार मध्य देश का अधिकांश, गुजरात और सौराष्ट्र का बड़ा भाग पांडवों की ओर था और प्रायः सारा पूर्व, उत्तर-पश्चिम और पश्चिमी विंध्य कौरवों की तरफ। पांडवों की कुल सेना सात अक्षौहिणी तथा कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी थी।

दोनों ओर की सेनाएं युद्ध के लिए तैयार हुईं। कृष्ण, धृष्टद्युम्न तथा सात्यकि ने पांडव-सैन्य की व्यूह-रचना की। कुरुक्षेत्र के प्रसिद्ध मैदान में दोनों सेनाएं एक-दूसरे के सामने आ डटीं। अठारह दिन तक यह महाभीषण संग्राम होता रहा। देश का अपार जन-धन इसमें स्वाहा हो गया। कौरवों के शक्तिशाली सेनापति भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य आदि धराशायी हो गये। अठा-रहवें दिन दुर्योधन मारा गया और महाभारत-युद्ध की समाप्ति हुई। यद्यपि पांडव इस युद्ध में विजयी हुए, पर उन्हें शान्ति न मिल सकी। चारों ओर उन्हें क्षोभ और निराशा दिखाई पड़ने लगी। श्रीकृष्ण ने शरशय्या पर लेटे हुए भीष्मपितामह से युधिष्ठिर को उपदेश दिलवाया। फिर हस्तिनापुर में राज्या-भिषेक उत्सव सम्पन्न करा कर वे द्वारका लौट गये। पांडवों ने कुछ समय बाद एक अश्वमेध यज्ञ किया और इस प्रकार वे भारत के चक्रवर्ती सम्राट् घोषित हुए। कृष्ण भी इस यज्ञ में सम्मिलित हुए और फिर द्वारका वापस चले गये। कृष्ण की यह अंतिम हस्तिनापुर-यात्रा थी अब वे वृद्ध हो चुके थे। महाभारत संग्राम में उन्हें जो अनवरत परिश्रम करना पड़ा उसका भी उनके स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। कुछ दिनों बाद द्वारका के यादवों ने गृहकलह द्वारा प्रभास तीर्थ में अपना नाश कर लिया। श्रीकृष्ण भी सौ वर्ष से ऊपर की अवस्था में गो-लोक सिधारे।

यादव वंश का ह्रास—द्वारका के यादवों का नाश एक प्रकार से यदुवंश की प्रमुख शक्ति का नाश था। भारत में अन्य कई भागों में भी यादवों के राज्य थे, परन्तु उनकी शक्ति और विस्तार प्रायः सीमित थे। श्रीकृष्ण ने अपने पराक्रम और बुद्धिमत्ता से यादवों का एक विशाल राज्य स्थापित कर लिया था। उन्होंने यादव-सत्ता की जो धाक भारत में जमा दी थी वह उनके बाद स्थिर न रह सकी। प्रभास के महानाश के अनन्तर जो लोग द्वारका में बचे उनकी दशा शोचनीय हो गयी। उग्रसेन, वसुदेव तथा कृष्ण की अनेक स्त्रियां, कुछ पुराणों के अनुसार, संताप से पीड़ित हो आग में जल मरीं। जो स्त्रियां, बच्चे और बूढ़े शेष रहे उन्हें श्रीकृष्ण के आदेशानुसार अर्जुन अपने

साथ लिवा कर हस्तिनापुर की ओर चले। दुर्भाग्य से मार्ग में आभीरों ने उन पर हमला किया और कुछ स्त्रियों को वे लूट ले गये। अर्जुन इस पर बहुत क्षुब्ध हुए परन्तु वे आभीरों को रोक न सके। शेष यादवों को ले कर अर्जुन इन्द्रप्रस्थ पहुंचे और उन्हें यथास्थान बसाया। पुराणों से ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के लड़के वज्र या वज्रनाभ को अर्जुन ने शूरसेन राज्य के सिंहासन पर अभिषिक्त किया।

महाभारत के बाद शूरसेन जनपद की दशा

वज्र के बाद से ईसवी पूर्व छठी शती तक के लम्बे अन्तराल में शूरसेन जनपद पर कौन-कौन से यादव या अन्य शासक हुए, इस का पता नहीं चलता। पुराणों के अनुसार महाभारत-युद्ध से लेकर नंद-राजा महापद्मनन्द के समय तक तेईस राजाओं ने मथुरा पर शासन किया। परन्तु इन राजाओं के नाम आदि नहीं मिलते। पुराण संख्योल्लेख के अतिरिक्त इस विषय पर मौन हैं। संभवतः इन राजाओं में से कोई इतना प्रसिद्ध नहीं हुआ जिसकी चर्चा पुराणकार करते, अन्यथा जहां शूरसेन के पड़ोसी जनपद कुरु और पंचाल के अनेक शासकों के उल्लेख मिलते हैं वहां मथुरा के कुछ राजाओं के नाम भी दिये जाते।

इस काल में कुरु-पंचाल जनपदों का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक प्रभाव शूरसेन जनपद पर अवश्य पड़ा होगा। शूरसेन की स्थिति इन दोनों शक्तिशाली राज्यों के बीच में थी। महाभारत युद्ध में शूरसेन और उत्तर-पंचाल ने कुरुओं की सहायता की थी। संभवतः इसके बाद भी इन तीनों राज्यों की मैत्री जारी रही। उपनिषद्-काल में पंचाल राज्य में तत्वज्ञान की उन्नति से शूरसेन जनपद ने भी प्रेरणा ग्रहण की होगी और वहां भी इस विषय का विकास हुआ होगा। कुरु-पंचाल में प्रचलित श्रेष्ठ भाषा का उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है। शूरसेन जनपद में भी उस समय इसी संस्कृत भाषा का प्रचलन रहा होगा। संभवतः यहां भी ब्राह्मण तथा आरण्यक-साहित्य का संकलन एवं कतिपय उपनिषदों का प्रणयन हुआ। प्राक्-बौद्धकाल में शूरसेन जनपद वैदिक धर्म का एक प्रधान केन्द्र था, जिसका पता बौद्ध साहित्य से चलता है।

सोलह महाजनपद—महात्मा बुद्ध के आविर्भाव के पहले भारत में सोलह बड़े जनपद थे। प्राचीन बौद्ध और जैन साहित्य में ये 'सोलस महाजनपद' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें से कई महाभारत युद्ध के पूर्व भी विद्यमान थे। इन सोलह बड़े राज्यों में एक शूरसेन भी था, जिसकी राजधानी मथुरा थी।

चले गये और वहीं बस गये। शूरसेन जनपद पर जरासंध का आधिपत्य अधिक दिन तक नहीं रहा। कुछ समय बाद पांडवों की सहायता से कृष्ण ने जरासंध का वध करा दिया। जरासंध जैसे महा-पराक्रमी और क्रूर शासक का अंत कर देने से श्रीकृष्ण का यश चारों ओर फैल गया।

पांडवों ने अब श्रीकृष्ण की सलाह से राजसूय यज्ञ की तैयारी की। उन्होंने भारत के अनेक राज्यों को जीतकर अपना प्रभुत्व बढ़ाया। शूरसेन जनपद तथा उसके आस-पास के राज्यों को सहदेव ने विजित किया। राजसूय यज्ञ बड़े समारोह के साथ संपन्न हुआ। चेदि का यादव नरेश शिशुपाल, जो जरासंध का बड़ा मित्र था, इस यज्ञ में कृष्ण द्वारा समाप्त कर दिया गया।

महाभारत युद्ध—कौरव-पांडवों के घरेलू झगड़ों ने जब बड़ा विषम रूप धारण कर लिया और कृष्ण आदि की समझौते की चेष्टाएं विफल हो गयीं, तब एक भीषण युद्ध का होना अनिवार्य हो गया। इस युद्धाग्नि में इच्छा या अनिच्छा से आहुति देने को प्रायः सारे भारत के शासक शामिल हुए। पांडवों की ओर मत्स्य, पंचाल, चेदि, कारुष, पश्चिमी मगध, काशी और कोशल के राजा हुए। सौराष्ट्र-गुजरात के वृष्णि यादव भी पांडवों के पक्ष में रहे। कृष्ण, युयुधान और सात्यकि इन यादवों के प्रमुख नेता थे। बलराम यद्यपि कौरवों के पक्षपाती थे, तो भी उन्होंने कौरव-पांडव युद्ध में भाग लेना उचित न समझा और वे तीर्थ-पर्यटन के लिए चले गये। कौरवों की ओर शूरसेन प्रदेश के यादव तथा माहिष्मती, अवंति, विदर्भ और निषद देश के यादव थे। इनके अतिरिक्त पूर्व में बंगाल, आसाम, उड़ीसा तथा उत्तर-पश्चिम एवं पश्चिम भारत के सारे राजा और वत्स देश के शासक कौरवों की ओर रहे। इस प्रकार मध्य देश का अधिकांश, गुजरात और सौराष्ट्र का बड़ा भाग पांडवों की ओर था और प्रायः सारा पूर्व, उत्तर-पश्चिम और पश्चिमी विन्ध्य कौरवों की तरफ। पांडवों की कुल सेना सात अक्षौहिणी तथा कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी थी।

दोनों ओर की सेनाएं युद्ध के लिए तैयार हुईं। कृष्ण, धृष्टद्युम्न तथा सात्यकि ने पांडव-सैन्य की व्यूह-रचना की। कुरुक्षेत्र के प्रसिद्ध मैदान में दोनों सेनाएं एक-दूसरे के सामने आ डटीं। अठारह दिन तक यह महाभीषण संग्राम होता रहा। देश का अपार जन-धन इसमें स्वाहा हो गया। कौरवों के शक्तिशाली सेनापति भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य आदि धराशायी हो गये। अठा-रहवें दिन दुर्योधन मारा गया और महाभारत-युद्ध की समाप्ति हुई। यद्यपि पांडव इस युद्ध में विजयी हुए, पर उन्हें शान्ति न मिल सकी। चारों ओर उन्हें क्षोभ और निराशा दिखाई पड़ने लगी। श्रीकृष्ण ने शरशय्या पर लेटे हुए भीष्मपितामह से युधिष्ठिर को उपदेश दिलवाया। फिर हस्तिनापुर में राज्या-भिषेक उत्सव सम्पन्न कराकर वे द्वारका लौट गये। पांडवों ने कुछ समय बाद एक अश्वमेध यज्ञ किया और इस प्रकार वे भारत के चक्रवर्ती सम्राट् घोषित हुए। कृष्ण भी इस यज्ञ में सम्मिलित हुए और फिर द्वारका वापस चले गये। कृष्ण की यह अंतिम हस्तिनापुर-यात्रा थी अब वे वृद्ध हो चुके थे। महाभारत संग्राम में उन्हें जो अनवरत परिश्रम करना पड़ा उसका भी उनके स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। कुछ दिनों बाद द्वारका के यादवों ने गृहकलह द्वारा प्रभास तीर्थ में अपना नाश कर लिया। श्रीकृष्ण भी सौ वर्ष से ऊपर की अवस्था में गो-लोक सिधारे।

यादव वंश का ह्रास—द्वारका के यादवों का नाश एक प्रकार से यदुवंश की प्रमुख शक्ति का नाश था। भारत में अन्य कई भागों में भी यादवों के राज्य थे, परन्तु उनकी शक्ति और विस्तार प्रायः सीमित थे। श्रीकृष्ण ने अपने पराक्रम और बुद्धिमत्ता से यादवों का एक विशाल राज्य स्थापित कर लिया था। उन्होंने यादव-सत्ता की जो धाक भारत में जमा दी थी वह उनके बाद स्थिर न रह सकी। प्रभास के महानाश के अनन्तर जो लोग द्वारका में बचे उनकी दशा शोचनीय हो गयी। उग्रसेन, वसुदेव तथा कृष्ण की अनेक स्त्रियां, कुछ पुराणों के अनुसार, संताप से पीड़ित हो आग में जल मरीं। जो स्त्रियां, बच्चे और बूढ़े शेष रहे उन्हें श्रीकृष्ण के आदेशानुसार अर्जुन अपने

साथ लिवा कर हस्तिनापुर की ओर चले। दुर्भाग्य से मार्ग में आभीरों ने उन पर हमला किया और कुछ स्त्रियों को वे लूट ले गये। अर्जुन इस पर बहुत क्षुब्ध हुए परन्तु वे आभीरों को रोक न सके। शेष यादवों को ले कर अर्जुन इन्द्रप्रस्थ पहुंचे और उन्हें यथास्थान बसाया। पुराणों से ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के लड़के वज्र या वज्रनाभ को अर्जुन ने शूरसेन राज्य के सिंहासन पर अभिषिक्त किया।

महाभारत के बाद शूरसेन जनपद की दशा

वज्र के बाद से ईसवी पूर्व छठी शती तक के लम्बे अन्तराल में शूरसेन जनपद पर कौन-कौन से यादव या अन्य शासक हुए, इस का पता नहीं चलता। पुराणों के अनुसार महाभारत-युद्ध से लेकर नंद-राजा महापद्मनन्द के समय तक तेईस राजाओं ने मथुरा पर शासन किया। परन्तु इन राजाओं के नाम आदि नहीं मिलते। पुराण संख्योल्लेख के अतिरिक्त इस विषय पर मौन हैं। संभवतः इन राजाओं में से कोई इतना प्रसिद्ध नहीं हुआ जिसकी चर्चा पुराणकार करते, अन्यथा जहां शूरसेन के पड़ोसी जनपद कुरु और पंचाल के अनेक शासकों के उल्लेख मिलते हैं वहां मथुरा के कुछ राजाओं के नाम भी दिये जाते।

इस काल में कुरु-पंचाल जनपदों का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक प्रभाव शूरसेन जनपद पर अवश्य पड़ा होगा। शूरसेन की स्थिति इन दोनों शक्तिशाली राज्यों के बीच में थी। महाभारत युद्ध में शूरसेन और उत्तर-पंचाल ने कुरुओं की सहायता की थी। संभवतः इसके बाद भी इन तीनों राज्यों की मैत्री जारी रही। उपनिषद्-काल में पंचाल राज्य में तत्वज्ञान की उन्नति से शूरसेन जनपद ने भी प्रेरणा ग्रहण की होगी और वहां भी इस विषय का विकास हुआ होगा। कुरु-पंचाल में प्रचलित श्रेष्ठ भाषा का उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है। शूरसेन जनपद में भी उस समय इसी संस्कृत भाषा का प्रचलन रहा होगा। संभवतः यहां भी ब्राह्मण तथा आरण्यक-साहित्य का संकलन एवं कतिपय उपनिषदों का प्रणयन हुआ। प्राक्-बौद्धकाल में शूरसेन जनपद वैदिक धर्म का एक प्रधान केन्द्र था, जिसका पता बौद्ध साहित्य से चलता है।

सोलह महाजनपद—महात्मा बुद्ध के आविर्भाव के पहले भारत में सोलह बड़े जनपद थे। प्राचीन बौद्ध और जैन साहित्य में ये 'सोलस महाजनपद' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें से कई महाभारत युद्ध के पूर्व भी विद्यमान थे। इन सोलह बड़े राज्यों में एक शूरसेन भी था, जिसकी राजधानी मथुरा थी।

अध्याय ४

महात्मा बुद्ध का समय और उनके पश्चात्

महात्मा बुद्ध के जीवन-काल (ई० पू० ६२३-५४३) में मथुरा की दशा का कुछ परिचय प्राचीन बौद्ध एवं जैन साहित्य से प्राप्त होता है। इस साहित्य से पता चलता है कि ई० पू० ६०० के बाद यहां अवंतिपुत्र (अवंतिपुत्तो) नाम का राजा राज्य कर रहा था। वह अवंति (पश्चिमी मालवा) के राजा चंडप्रद्योत की लड़की का लड़का था। चंडप्रद्योत की एक लड़की वासवदत्ता का विवाह कौशांबी के प्रसिद्ध राजा उदयन से हुआ था। दूसरी लड़की मथुरा के राजा को ब्याही गयी, जिससे अवंतिपुत्र का जन्म हुआ। तत्कालीन समृद्ध एवं विशाल अवंतिराज्य के साथ मथुरा का वैवाहिक संबंध इस बात को सूचित करता है कि इस समय भी शूरसेन जनपद का स्थान गौरवपूर्ण माना जाता था।

बौद्ध ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि अवंतिपुत्र के राज्यकाल में एक बार बुद्ध स्वयं मथुरा पधारे। इस नगरी की कीर्ति से वे प्रभावित हुए होंगे और शायद इसी से उनका यहां आगमन हुआ। परन्तु बुद्ध के ऊपर इस नगरी का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। यहां की राज्य-व्यवस्था में उन्हें कई दोष दिखायी पड़े। साथ ही उन्हें यहां की भूमि में कोई आकर्षण नहीं दिखायी दिया। जो बातें महात्मा बुद्ध ने मथुरा में पायीं वे ये थीं—

१—यहां की भूमि ऊबड़-खाबड़ थी,
२—धूल और रेत की अधिकता थी,
३—भीषण कुत्तों का यहां बड़ा जोर था,
४—जंगली यक्ष बहुत तंग करते थे, और
५—भिक्षा मिलने में कठिनाई होती थी।

मथुरा में बुद्ध के प्रति सम्मान इसलिए न प्रदर्शित किया गया होगा कि उस समय वहां वैदिक धर्म का जोर था। ब्राह्मणों ने स्वभावतः अपने धर्म के प्रतिस्पर्धी को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा होगा। बुद्ध जी ने जिन यक्षों का उल्लेख किया है वे यक्षों के पूजक लोग होंगे। उस समय यक्ष मत मानने वाले अच्छी संख्या में मथुरा में रहे होंगे। इन्हीं लोगों ने बुद्ध को परेशान किया होगा।

मथुरा में बुद्ध के प्रति किसी ने सम्मान का भाव न प्रकट किया हो, ऐसी बात नहीं है। बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि मथुरा के अनेक निवासियों द्वारा [बुद्ध को भिक्षा दी गयी और उनके प्रति आदर प्रकट किया गया (३०)। सिंहली बौद्ध साहित्य में मथुरा नगर को अत्यंत श्रेष्ठ नगर कहा गया है और उसे एक विस्तृत राज्य की राजधानी बताया गया है (३१)।

---

(३०) उदाहरणार्थ देखिए विमानवत्थु (भाष्य, पृ० ११८—११६), जिसके अनुसार उत्तर मथुरा की एक स्त्री ने बुद्ध को भिक्षा दी। अंगुत्तरनिकाय (जि० २, पृ० ५७) में आया है कि एक बार बुद्ध मथुरा के समीप एक पेड़ की छाया में बैठे थे। वहां बहुत से गृहस्थ स्त्री-पुरुष आये, जिन्होंने बुद्ध की पूजा की। बुद्ध के एक शिष्य महाकाश्यप की पत्नी भद्रा कपिलानी मथुरा की निवासिनी थी।

(३१) द्रष्टव्य दीपवंश (संपा० ओल्डनबर्ग), पृ० २७।

बुद्ध के मथुरा-आगमन के फलस्वरूप यहां के लोगों में बौद्ध धर्म की ओर थोड़ा-बहुत झुकाव हुआ होगा। यदि यह बात सत्य है कि मथुरा का तत्कालीन शासक अवंतिपुत्र बौद्ध हो गया, तो हो सकता है कि यहां की कुछ जनता ने भी बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया हो। मौर्य शासन-काल से तो मथुरा में बौद्ध धर्म का एक अच्छा केन्द्र स्थापित हो गया, जो कई शताब्दियों तक विकसित होता रहा।

ऐसा प्रतीत होता है कि शैशुनाग–वंश के समय तक शूरसेन जनपद अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रहा। संभवतः अवंतिपुत्र के बाद उसके वंशजों का यहां पर शासन रहा। पांचवीं शती ई० पूर्व के अंत में मगध नंद वंश के अधिकार में आया। इस वंश में महापद्मनन्द प्रतापी शासक हुआ। साम्राज्यवाद की महत्वाकांक्षा से प्रेरित हो कर महापद्मनन्द ने तत्कालीन अनेक छोटे-बड़े स्वतंत्र राज्यों का अस्तित्व समाप्त कर दिया। इनमें शूरसेन जनपद भी था।

मौर्य वंश का अधिकार (ई० पूर्व ३२५–१८५)—नन्द वंश की समाप्ति के बाद मगध पर मौर्य वंश का शासन प्रारम्भ हुआ। चंद्रगुप्त मौर्य (ई०पूर्व ३२५–२९८) इस वंश का पहला शासक था। उसने अपने प्रधान मंत्री चाणक्य या कौटिल्य की सहायता से मगध साम्राज्य को बहुत बढ़ाया। दक्षिण के कुछ भाग को छोड़ कर प्रायः समस्त भारत उसके अधिकार में आ गया।

अशोक—चन्द्रगुप्त का पौत्र अशोक(ई० पूर्व २७२–२३२)मौर्य सम्राटों में सबसे प्रसिद्ध शासक हुआ। इसके समय में बौद्ध धर्म की बड़ी उन्नति हुई। देश के मुख्य-मुख्य स्थानों में अशोक ने बौद्ध स्तूपों का निर्माण कराया और शिलाओं तथा स्तम्भों पर अनेक राजाज्ञायें उत्कीर्ण करवायीं। प्रसिद्ध है कि मथुरा में यमुना-तट पर अशोक ने विशाल स्तूपों का निर्माण कराया। जब चीनी यात्री हुएन–सांग ई० सातवीं शती में मथुरा आया तब उसने अशोक के बनवाये हुए तीन स्तूप यहां देखे। इनका उल्लेख इस यात्री ने अपने यात्रा-विवरण में किया है।

यूनानियों द्वारा शूरसेन प्रदेश का वर्णन—चंद्रगुप्त के समय भारत आये हुए मेगस्थनीज नामक यूनानी राजदूत ने शूरसेन प्रदेश की भी चर्चा की है। एरियन नामक एक दूसरे यूनानी लेखक ने मेगस्थनीज के विवरण को उद्धृत करते हुए लिखा है कि 'शौरसेनाइ' लोग 'हेराक्लीज' को बहुत आदर की दृष्टि से देखते हैं। शौरसेनाइ लोगों के दो बड़े नगर हैं—'मेथोरा' और 'क्लीसोबोरा'। उनके राज्य में 'जोबरस' (३२) नदी बहती है, जिसमें नावें चल सकती हैं। प्लिनी नामक एक दूसरे यूनानी लेखक ने लिखा है कि 'जोमनस' नदी मेथोरा और क्लीसोबोरा के बीच से बहती है (३३)। इस लेख का भी आधार मेगस्थनीज का उपर्युक्त लेख है। टॉलमी नाम के यूनानी लेखक ने मथुरा का नाम 'मोदुरा' दिया है और उसकी स्थिति १२५° तथा २०°–३०'पर बतायी है। उसने मथुरा को देवताओं का नगर कहा है।(३४)

शुंग वंश का आधिपत्य (ई० पूर्व १८५–ई० पूर्व १००)—बृहद्रथ मौर्य वंश का अंतिम शासक हुआ। उसे उसके ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र ने ई० पूर्व १८५ में मार कर मौर्य वंश की समाप्ति कर दी। पुष्यमित्र से मगध साम्राज्य पर शुंग वंश का शासन आरम्भ हुआ। महाभाष्य ग्रंथ में पुष्यमित्र के समकालीन पतंजलि ने मथुरा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि यहां के लोग सांकाश्य तथा पाटलिपुत्र के

---

(३२) 'जोबरस' (Jobares) या 'जोमनस' (Jomanes) नाम यमुना नदी के लिए प्रयुक्त हुआ है।

(३३) दे० मैक् क्रिडल—ऐंश्यंट इंडिया, मेगस्थनीज ऐंड एरियन (कलकत्ता, १९३६ ई०), पृ० २०६, प्लिनी—नेचुरल हिस्ट्री, ६, २२।

(३४) मैक्क्रिडल—ऐंश्यंट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाइ टॉलमी (कलकत्ता, १९२७), पृ० १२४।

नवासियों की अपेक्षा अधिक श्री-सम्पन्न थे (३५)। शुंग काल में उत्तर भारत के मुख्य नगरों में मथुरा की भी गणना थी। कई बड़े व्यापारिक मार्ग मथुरा होकर गुजरते थे। यहां से होकर एक सड़क वेरंजा नगरी होती हुई श्रावस्ती को जाती थी। तक्षशिला से पाटलिपुत्र की ओर तथा दक्षिण में विदिशा और उज्जयिनी की ओर जाने वाली बड़ी सड़कें भी मथुरा होकर जाती थीं। भागवत, जैन तथा बौद्ध धर्म का केन्द्र होने के कारण इस काल में मथुरा की प्रसिद्धि बहुत बढ़ गयी।

यवन-आक्रमण—शुंगों के शासन-काल में उत्तर-पश्चिम की ओर से उत्तर भारत पर यवन आक्रमणों का उल्लेख तत्कालीन साहित्य में मिलता है। ये यवन बैक्ट्रिया के यूनानी शासक थे। डिमेट्रियस नामक यूनानी राजा पुष्यमित्र का समकालीन था। पश्चिमी पंजाब में अपनी शक्ति बढ़ा लेने के बाद डिमेट्रियस ने ही संभवतः मथुरा, मध्यमिका (नगरी, चित्तौड़ के समीप) और साकेत (अयोध्या) तक आक्रमण किया। गार्गी संहिता के युगपुराण में यवनों के द्वारा साकेत, पंचाल और मथुरा पर अधिकार करके कुसुमध्वज (पाटलिपुत्र) पहुंचने का विवरण मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि यवनों का यह आक्रमण भारत में काफी दूर तक हुआ तथा इसके कारण जनता में कुछ समय तक घबड़ाहट फैल गयी। परन्तु आपसी कलह के कारण यवन-सत्ता मध्यदेश में न जम सकी।

मथुरा के मित्रवंशी राजा—यद्यपि ई० पूर्व १०० के लगभग शुंग वंश की प्रधान शाखा का अंत हो गया, तो भी उसकी अन्य कई शाखायें बाद में भी शासन करती रहीं। इन शाखाओं के केन्द्र अहिच्छत्रा, विदिशा, मथुरा, अयोध्या तथा कौशाम्बी थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें से कई शाखायें पुष्यमित्र और उसके उत्तराधिकारियों के समय से ही चली आ रही थीं और प्रधान शुंग-वंश की अधीनता में विभिन्न प्रदेशों का शासन कर रही थीं। मथुरा से अनेक मित्र राजाओं के सिक्के मिले हैं, जिनके विवरण कनिंघम, स्मिथ, एलन आदि के द्वारा मुद्रा-सूचियों में दिये गये हैं। जिन 'मित्र' नाम वाले शासकों के सिक्के मथुरा से प्राप्त हुए हैं वे हैं—गोमित्र प्रथम तथा द्वितीय, ब्रह्ममित्र, दृढ़मित्र, सूर्यमित्र और विष्णुमित्र। इनमें से गोमित्र प्रथम का समय ई० पू० २०० के लगभग प्रतीत होता है। अन्य राजाओं ने ई० पू० २०० से लेकर ई० पू० १०० या उसके कुछ बाद तक शासन किया। इनके अतिरिक्त बलभूति के सिक्के तथा दत्त नाम वाले राजाओं के भी सिक्के मथुरा से प्राप्त हुए हैं।

---

(३५) "सांकाश्यकेभ्यश्च पाटलिपुत्रकेभ्यश्च माथुरा अभिरूपतरा इति" (महाभाष्य, ५,३,५७)।

अध्याय ५

शक-कुषाण-काल

(लगभग ई० पूर्व १०० से २०० ई० तक)

शूरसेन जनपद पर शुंग वंश की प्रभुता लगभग ई० पूर्व १०० तक बनी रही। इसके बाद उत्तर भारत की राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन आया। दक्षिण की ओर आंध्र या आंध्रभृत्य लोगों का जोर बहुत बढ़ गया। उन्होंने विदिशा तक पहुंच कर वहां की शुंग-सत्ता को समाप्त कर दिया। इधर मथुरा की ओर विदेशी शकों का प्रबल झंझावात आया, जिसने यहां के मित्रवंशी राजाओं की शक्ति को हिला दिया। उत्तर-पश्चिम भारत की तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति का लाभ उठाकर शक लोग आगे बढ़ने लगे। उन्होंने हिंद-यूनानी शासकों की शक्ति को कमजोर कर दिया। जब उन्होंने देखा कि पूर्व में शुंग शासन ढीला पड़ रहा है, तब वे आगे बढ़े और शुंग साम्राज्य के पश्चिमी भाग को उन्होंने अपने अधिकार में कर लिया। इस जीते हुए प्रदेश का केन्द्र उन्होंने मथुरा को बनाया, जो उस समय उत्तर भारत में धर्म, कला तथा व्यापारिक यातायात का एक प्रधान नगर था। शकों के उत्तर-पश्चिम राज्य की राजधानी तक्षशिला हुई। धीरे-धीरे तक्षशिला और मथुरा पर शकों की दो पृथक् शाखाओं का अधिकार कायम हो गया।

मथुरा के शक-शासक (लगभग ई० पूर्व १०० से ई० पूर्व ५७ तक)—मथुरा पर जिन शकों ने राज्य किया उनके नाम सिक्कों तथा अभिलेखों द्वारा जाने गये हैं। प्रारंभिक क्षत्रप-शासकों के नाम हगान और हगामष मिलते हैं। इनके सिक्कों से प्रतीत होता है कि इन दोनों ने कुछ समय तक सम्मिलित रूप में शासन किया। संभवतः ये दोनों भाई थे। कुछ सिक्के केवल हगामष नाम के मिले हैं। दो अन्य शासकों के नाम के साथ भी 'क्षत्रप' शब्द मिलता है। ये शिवघोष तथा शिवदत्त हैं। इनके सिक्के कम मिले हैं, पर वे बड़े महत्व के हैं (३६)।

राजुवुल—हगान-हगामष के बाद राजुवुल (३७) मथुरा का शासक हुआ। इसके सिक्के सिंधु-घाटी से लेकर पूर्व में गंगा-यमुना दोआब तक मिले हैं, जिससे राजुवुल की विस्तृत सत्ता सिद्ध होती है। इसके समय में मथुरा राज्य की सीमाएं भी बढ़ गयी होंगी (३८)।

१८६६ ई० में मथुरा से पत्थर का एक सिंह-शीर्ष मिला था, जो इस समय लंदन के ब्रिटिश म्यूजियम में है। इस पर खरोष्ठी लिपि तथा प्राकृत भाषा में कई लेख उत्कीर्ण हैं। इनमें क्षत्रप-शासकों तथा उनके परिवार वालों के नाम मिलते हैं। एक लेख में महाक्षत्रप राजुवुल की पटरानी कमुइअ (कंबोजिका) के द्वारा बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप तथा गुहा विहार नामक मठ बनवाने का जिक्र है। संभवतः यह विहार मथुरा में यमुना-तट पर वर्तमान सप्तर्षि टीला पर था। यहीं से उक्त सिंह-शीर्ष मिला था।

---

(३६) दे० एलन—'क्वायंस आफ ऐंश्यंट इंडिया', भूमिका, पृ० १११-१२।

(३७) इसका नाम रजुवुल, रंजुवुल तथा राजुल भी मिलता है।

(३८) कनिंघम का अनुमान है कि मथुरा के क्षत्रपों के समय मथुरा राज्य का विस्तार उत्तर में दिल्ली तक, दक्षिण में ग्वालियर तथा पश्चिम में अजमेर तक था, कनिंघम—क्वायंस आफ ऐंश्यंट इंडिया (लंदन, १८९१), पृ० ८५। देखिए एलन—वही, भूमिका, पृ० ११२-१५।

शोडास (लग० ई० पूर्व ८०–५७)—राजुवुल के बाद उसका पुत्र शोडास राज्य का अधिकारी हुआ। उक्त सिंह–शीर्ष के लेख पर शोडास की उपाधि क्षत्रप मिलती है, पर मथुरा से ही प्राप्त अन्य लेखों में उसे 'महाक्षत्रप' कहा गया है। कंकाली टीला, मथुरा से प्राप्त एक शिलापट्ट पर सं० ७२ का ब्राह्मी लेख खुदा है, जिसके अनुसार स्वामी महाक्षत्रप शोडास के राज्यकाल में एक जैन भिक्षु की शिष्या अमोहिनी ने एक जैन आयागपट्ट की प्रतिष्ठापना की। राजुवुल की पत्नी कम्बोजिका ने मथुरा में यमुना-तट पर जिस बौद्ध विहार का निर्माण कराया था उसके लिए शोडास ने अपने राज्यकाल में कुछ भूमि दान में दी। यह दान मथुरा के थेरवाद (हीनयान) मत वाले बौद्धों की सर्वास्तिवादिन् नामक शाखा के भिक्षुओं के निर्वाहार्थ दिया गया। सिंह-शीर्ष के खरोष्ठी लेखों से यह भी ज्ञात होता है कि शोडास के समय मथुरा के बौद्धों में हीनयान तथा महायान (महासंघिक)–इन दोनों मुख्य शाखाओं के अनुयायी लोग थे और इनमें आपस में वाद-विवाद भी हुआ करते थे। एक बार सर्वास्तिवादियों ने महासंघिकों से शास्त्रार्थ में लोहा लेने के लिए सुदूर नगर (जलालाबाद) से एक प्रसिद्ध विद्वान् को आमंत्रित किया था।

शोडास के समय के अभिलेखों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण वह लेख है, जो एक सिरदल या धन्नी पर उत्कीर्ण है। यह सिरदल मथुरा छावनी के एक कुयें पर मिली थी, जहां वह कटरा केशवदेव से लायी गयी प्रतीत होती है। इस पर १२ पंक्तियों का एक संस्कृत–लेख खुदा हुआ है, जिसके अनुसार स्वामी महाक्षत्रप शोडास के शासन-काल में वसु नामक व्यक्ति के द्वारा महास्थान (जन्म-स्थान) पर भगवान् वासुदेव के एक चतुःशाला मंदिर के लिए तोरण (सिरदल से सुसज्जित द्वार) तथा वेदिका की स्थापना की गयी।

शकों की पराजय—ई० पूर्व ५७ के लगभग उज्जयिनी के उत्तर में मालवगण ने अपनी शक्ति संगठित कर ली। राष्ट्रप्रेमी मालव लोग चाहते थे कि भारत से शकों को भगा कर विदेशी शासन से छुटकारा पाया जाय। उन्होंने दक्षिण महाराष्ट्र के तत्कालीन सातवाहन शासकों से इस कार्य में सहायता ली और उज्जयिनी के शकों को परास्त कर दिया। यह पराभव शकों की शक्ति पर गहरा प्रहार सिद्ध हुआ और कुछ समय के लिए उत्तर भारत पर उनका राजनैतिक प्रभुत्व समाप्त हो गया।

मथुरा का दत्तवंश—उज्जैन में शकों की हार का प्रभाव मथुरा पर भी पड़ा और यहां के क्षत्रप राजवंश का अंत हो गया। मथुरा और उसके आस-पास उपलब्ध सिक्कों से पता चलता है कि इसके बाद वहां पर दत्त वंश का अधिकार स्थापित हो गया। इस वंश के राजाओं के नाम पुरुषदत्त, उत्तमदत्त, रामदत्त प्रथम और द्वितीय कामदत्त, शेषदत्त, भवदत्त तथा बलभूति मिले हैं।

कुषाण वंश (लगभग १ ई० से २०० ई० तक)—लगभग ई० सन् के आरम्भ से शकों की कुषाण नामक एक शाखा का प्राबल्य हुआ। विद्वानों ने उन्हें युइशि या ऋषिक तुरुष्क (तुखार) नाम दिया है। इनका पहला शक्तिशाली सरदार कुजुलकर कडफाइसिस नामक हुआ।

विम तक्षम (लग० ४०–७७ ई०)—कुजुल के बाद उसका पुत्र विम तक्षम (विम कडफाइसिस) ४० ई० के लगभग राज्य का अधिकारी हुआ। कुजुल के द्वारा जीते हुए प्रदेशों के अतिरिक्त विम ने पूर्वी उत्तर-प्रदेश तक अपना अधिकार स्थापित कर लिया। बनारस इसके राज्य की पूर्वी सीमा हो गयी। इस भू-भाग का प्रमुख केंद्र मथुरा नगर हुआ। विम के सिक्के पंजाब से लेकर बनारस तक बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं। इन पर एक ओर राजा की मूर्ति मिलती है और दूसरी ओर नंदी बैल के साथ खड़े हुए शिव की। यह राजा शिव का परम भक्त था।

कनिष्क (७८–१०१ ई०)—विम के बाद उसका उत्तराधिकारी कनिष्क हुआ। विद्वानों का अनुमान है कि कनिष्क विम के परिवार का न होकर कुषाणों के किसी दूसरे घराने का था। इसने अपने राज्यारोहण की तिथि से एक नया संवत् चलाया, जो 'शक' संवत् के नाम से प्रसिद्ध है। कनिष्क कुषाणवंश का सबसे प्रतापी शासक हुआ।

कनिष्क के समय में मथुरा नगर की बहुमुखी उन्नति हुई। यह नगर राजनैतिक केन्द्र होने के साथ-साथ धर्म, कला, साहित्य एवं व्यापार का भी केन्द्र बना। कनिष्क बौद्ध धर्म का अनुयायी था। उसके समय में साम्राज्य के अन्य प्रमुख स्थानों के साथ मथुरा में भी इस धर्म की बड़ी उन्नति हुई और अनेक बौद्ध स्तूपों, संघारामों आदि का निर्माण हुआ। मानुषी रूप में बुद्ध की प्रतिमा का निर्माण मथुरा में इसी समय से प्रारम्भ हुआ। महायान धर्म की उन्नति के फलस्वरूप पूजा के निमित्त विविध धार्मिक प्रतिमाओं का निर्माण बड़ी संख्या में होने लगा। कनिष्क के समय की बौद्ध प्रतिमाएं सैकड़ों की संख्या में मथुरा और उसके आसपास से प्राप्त हो चुकी हैं। महायान मत के आचार्य वसुमित्र और 'बुद्धचरित' एवं 'सौंदरनंद' आदि ग्रन्थों के प्रसिद्ध रचयिता अश्वघोष कनिष्क की राजसभा के रत्न थे। इनके अतिरिक्त पार्श्व, चरक, नागार्जुन, संघरक्ष, माठर आदि अन्य कितने ही कवि, कलाकार और विद्वान् कनिष्क की सभा में विद्यमान थे।

हुविष्क (१०६–१३८ ई०)—कनिष्क के बाद वासिष्क तथा उसके पश्चात् हुविष्क कुषाण साम्राज्य का शासक हुआ। हुविष्क के राज्य-काल के लेख २८वें वर्ष से लेकर ६०वें वर्ष तक के मिले हैं। इसके सिक्कों तथा लेखों के प्राप्ति-स्थानों से पता चलता है कि काबुल से लेकर मथुरा के कुछ पूर्व तक हुविष्क का अधिकार फैला हुआ था।

कनिष्क की तरह यह राजा भी बौद्ध धर्म का संरक्षक था। मथुरा में इसके द्वारा एक विशाल बौद्ध विहार की स्थापना की गयी, जिसका नाम 'हुविष्क विहार' था। इसके अतिरिक्त अन्य कई स्तूप और विहार इसके राज्य-काल में मथुरा में बनवाये गये। बौद्ध मूर्तियों का निर्माण बहुत बड़ी संख्या में हुआ। मथुरा से प्राप्त एक लेख से पता चलता है कि हुविष्क के पितामह के समय में निर्मित देवकुल की दशा खराब होने पर उसकी मरम्मत हुविष्क के शासनकाल में की गयी।

वासुदेव (१३८–१७६ई०)—हुविष्क के बाद मथुरा की राजगद्दी पर वासुदेव बैठा। इसके समय के लेख प्रायः मथुरा और उसके निकट से ही प्राप्त हुए हैं, जिससे अनुमान होता है कि वासुदेव के शासन-काल में कुषाण वंश की प्रधान शाखा का प्रभुत्व कम हो गया था।

परवर्ती शासक—वासुदेव के राज्य-काल का अंतिम लेख ६८वें वर्ष का मिला है, जिससे ज्ञात होता है कि इसी समय (१७६ई०) के कुछ बाद इसका देहांत हो गया। वासुदेव कुषाण वंश का अंतिम प्रसिद्ध शासक था। उसके बाद कनिष्क तृतीय तथा वासुदेव द्वितीय आदि कई कुषाण राजाओं के नाम सिक्कों तथा लेखों द्वारा ज्ञात हुए हैं।

अध्याय ६

नाग-शासन से मुस्लिम विजय तक

(लगभग २०० ई० से ११९४ ई० तक)

कुषाणों के विजेता—ई० दूसरी शती का अन्त होते-होते मथुरा प्रदेश तथा उसके पश्चिम से कुषाण-सत्ता उखड़ गयी। मध्य देश तथा पूर्वी पंजाब से कुषाणों को हटाने में कई शक्तियों का हाथ था। कौशाम्बी तथा विंध्य प्रदेश के मघ राजाओं एवं पद्मावती, कांतिपुरी तथा मथुरा के नाग वंशी लोगों ने मध्य देश से तथा यौधेयों, मालवों और कुणिंदों ने राजस्थान और पंजाब से कुषाणों को भगाने में प्रमुख भाग लिया।

नाग-शासन काल (लग०२००–३५० ई०)—नागों के शासन-काल में मथुरा में शैव धर्म की विशेष उन्नति हुई। नाग देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का निर्माण भी इस काल में बहुत हुआ। अन्य धर्मों का विकास भी साथ-साथ होता रहा। ३१३ ई० में मथुरा के जैन श्वेताम्बरों ने स्कन्दिल नामक आचार्य की अध्यक्षता में मथुरा में एक बड़ी सभा का आयोजन किया। इस सभा में कई धार्मिक ग्रन्थों के शुद्ध पाठ स्थिर किये गये। इसी वर्ष दूसरी ऐसी ही सभा वलभी में हुई। नागों के समय में मथुरा और पद्मावती नगर बड़े समृद्ध नगरों के रूप में विकसित हुए। यहां विशाल मंदिर, महल, मठ, स्तूप तथा अन्य इमारतों का निर्माण हुआ। धर्म, कला-कौशल तथा व्यापार के ये प्रधान केन्द्र हुए। नाग-शासन का अन्त होने के बाद मथुरा को राजनैतिक केन्द्र होने का गौरव फिर कभी न प्राप्त हो सका।

गुप्त वंश—ई०चौथी शती के आरम्भ में महाराज गुप्त के द्वारा गुप्तवंश की स्थापना की गयी। उसका लड़का घटोत्कच हुआ, जिसका पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम ३२० ई० में पाटलिपुत्र की राजगद्दी पर बैठा। उसने 'महाराजाधिराज' उपाधि ग्रहण की। वैशाली के प्रसिद्ध लिच्छवि गणतंत्र की कन्या कुमारदेवी के साथ विवाह कर चन्द्रगुप्त ने अपनी शक्ति बढ़ा ली।

समुद्रगुप्त (३३५–३७६ई०)—चन्द्रगुप्त प्रथम का उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त बड़ा प्रतापी एवं महत्वाकांक्षी शासक हुआ। उसके द्वारा भारत की दिग्विजय की गयी, जिसका विवरण इलाहाबाद किले के प्रसिद्ध शिलास्तम्भ पर विस्तारपूर्वक दिया है। इस दिग्विजय में मथुरा को भी जीत कर समुद्रगुप्त ने उसे अपने साम्राज्य का एक अंग बना लिया। मथुरा के जिस शासक को उसने पराजित किया वह गणपति नाग था। मथुरा के नाग-शासन का अन्त करने के बाद समुद्रगुप्त ने यहां की क्या व्यवस्था की, इसका ठीक पता नहीं चलता। उसके बाद उसका यशस्वी पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' गुप्त साम्राज्य का अधिकारी हुआ।

चन्द्रगुप्त के समय मथुरा की दशा—चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय के तीन लेख अब तक मथुरा से प्राप्त हुए हैं। पहला लेख गुप्त संवत् ६१ (३८०ई०) का है। यह मथुरा नगर में रंगेश्वर महादेव के समीप चंडूल-मंडूल बगीची से प्राप्त हुआ था। लेख लाल पत्थर के एक अठपहलू खंभे पर उत्कीर्ण है। यह चन्द्रगुप्त के पांचवें राज्य-वर्ष में लिखा गया था। लेख में उदिताचार्य के द्वारा उपमितेश्वर तथा कपिलेश्वर नामक शिव-प्रतिमाओं की प्रतिष्ठापना का जिक्र है। जिस खम्भे पर यह उत्कीर्ण है, उस पर ऊपर त्रिशूल तथा नीचे दण्डधारी रुद्र (लकुलीश) की मूर्ति बनी है। चन्द्रगुप्त के शासन-काल के अद्यावधि उपलब्ध लेखों में यह लेख सबसे पुराना है। तत्कालीन मथुरा में शैव धर्म की विद्यमानता पर इसके द्वारा प्रकाश पड़ता है।

मथुरा से अन्य दोनों लेख कटरा केशवदेव से प्राप्त हुए हैं। इनमें से एक (३९) में महाराज गुप्त से लेकर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य तक की वंशावली दी हुई है। लेख के अन्त में चन्द्रगुप्त के द्वारा कोई बड़ा धार्मिक कार्य सम्पन्न किये जाने का संकेत मिलता है। लेख का अंतिम भाग खंडित होने के कारण यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि उसमें किस धार्मिक कार्य का कथन था। बहुत संभव है कि परम भागवत महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त के द्वारा श्रीकृष्ण-जन्मस्थान पर एक भव्य मंदिर का निर्माण कराया गया हो, जिसका विवरण इस लेख में रहा होगा (४०)। तीसरा लेख (४१) जन्मस्थान की सफाई कराते समय १९५४ ई० में प्राप्त हुआ है। दुर्भाग्य से यह लेख बहुत खंडित है और इसमें गुप्त वंशावली के प्रारम्भिक अंशों के अतिरिक्त शेष भाग टूट गये हैं।

फाह्यान का वर्णन—चन्द्रगुप्त के शासन-काल में फाह्यान नामक चीनी पर्यटक पश्चिमोत्तर मार्ग से भारत आया। वह अन्य अनेक नगरों से होता हुआ मथुरा भी पहुंचा। इस नगर का जो वर्णन उसने किया है, उससे मथुरा की तत्कालीन धार्मिक स्थिति का पता चलता है। वह लिखता है—

"यहां (मथुरा) के छोटे-बड़े सभी लोग बौद्ध धर्म को मानते हैं। शाक्यमुनि (बुद्ध) के बाद से यहां के निवासी इस धर्म का पालन करते आ रहे हैं। 'मोटुलो' (मथुरा) नगर तथा उसके आसपास 'पूना' (यमुना) नदी के दोनों ओर २० संघाराम (बौद्ध मठ) हैं, जिनमें लगभग ३,००० भिक्षु निवास करते हैं। छः बौद्ध स्तूप भी हैं। सारिपुत्र के सम्मान में बना हुआ स्तूप सबसे अधिक प्रसिद्ध है। दूसरा स्तूप आनन्द की तथा तीसरा मुद्गल पुत्र की याद में बनाया गया है। शेष तीनों क्रमशः अभिधर्म, सूत्र और विनय के लिए निर्मित किये गये हैं, जो बौद्ध धर्म के तीन अंग (त्रिपिटक) हैं"।

हूंण-आक्रमण—चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त प्रथम के अंतिम समय में उत्तर-पश्चिम की अरक्षित सीमा की ओर से हूणों का भयंकर आक्रमण गुप्त साम्राज्य पर हुआ। यद्यपि कुमारगुप्त के यशस्वी पुत्र स्कन्दगुप्त ने हूणों का कड़ा मुकाबला किया, तो भी इन बर्बरों के भीषण आक्रमणों ने गुप्त साम्राज्य को डगमगा दिया।

तोरमाण की अध्यक्षता में हूणों ने ५०० ई० के लगभग पश्चिमी मध्यभारत पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इस समय उनकी शक्ति बहुत प्रबल थी। ४८४ ई० में उन्होंने ईरान के सम्राट् को समाप्त कर वहां अपना आधिपत्य जमा लिया था। बल्ख को उन्होंने अपना केन्द्र बनाया। उसके आगे दक्षिण-पूर्व चल कर वे तक्षशिला आदि विशाल नगरों को उजाड़ते और राज्यों को नष्ट करते हुए, मथुरा होकर मध्य भारत तक पहुंच गये थे। मथुरा नगर उस समय बहुत समृद्ध था और वहां अनेक बौद्ध स्तूपों और संघारामों के अतिरिक्त विशाल जैन तथा हिन्दू इमारतें विद्यमान थीं। हूणों के द्वारा अधिकांश इमारतें जलाई और नष्ट की गईं, प्राचीन मूर्तियां तोड़ डाली गईं और नगर को बरबाद किया गया। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में जिस विशाल मंदिर का निर्माण श्रीकृष्ण-जन्मस्थान पर किया गया था, वह भी हूणों की क्रूरता का शिकार हुआ होगा। ग्वालियर पहुंचने के पहले संभवतः हूण लोग मथुरा में कुछ समय तक ठहरे। यहां उनके सिक्कों के कई ढेर प्राप्त हुए हैं। हूणों के आक्रमणों के बाद से लेकर महमूद गजनवी के समय (१०१७ ई०) तक मथुरा में प्रायः शांति रही और इस अवधि में कोई बड़ा विदेशी आक्रमण नहीं हुआ।

---

(३९) मथुरा संग्रहालय (संख्या क्यू० ५)।

(४०) लेख के प्राप्ति-स्थान कटरा केशवदेव से गुप्तकालीन बहुसंख्यक कलाकृतियां प्राप्त हुई हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि इस काल में यहां अनेक सुन्दर प्रतिमाओं सहित एक वैष्णव मंदिर था।

(४१) मथुरा संग्रहालय (सं० ३८३५)।

मध्यकाल (५५० ई० से ११९४ ई० तक)—गुप्त साम्राज्य की समाप्ति के बाद लगभग आधी शताब्दी तक उत्तर भारत की राजनैतिक स्थिति ठीक नहीं रही। अनेक छोटे-बड़े राजा विभिन्न प्रदेशों में अपनी शक्ति बढ़ाने में लग गये। सम्राट् हर्षवर्धन के पहले तक कोई ऐसी प्रबल केंद्रीय सत्ता स्थापित न हो सकी जो छोटे-मोटे राज्यों को सुसंगठित करती। ई० छठी शती के मध्य से बारहवीं शती के अन्त तक क्रमशः मौखरी, वर्धन, गुर्जर प्रतीहार तथा गाहड़वाल वंशों ने मथुरा प्रदेश पर शासन किया।

हुएन-सांग का मथुरा वर्णन—वर्धनवंशी सम्राट् हर्ष (६०६–६४७ ई०) के समय में हुएन-सांग नामक चीनी यात्री भारत आया। हुएन-सांग के यात्रा-विवरण से तत्कालीन मथुरा की दशा पर भी बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। यह यात्री लगभग ६३५ ई० में मथुरा आया। उसने मथुरा का जो वर्णन किया है वह संक्षेप में इस प्रकार है—

"मथुरा राज्य का क्षेत्रफल ५,००० ली (लगभग ८३३ मील) तथा उसकी राजधानी मथुरा नगर का विस्तार २० ली (लगभग ३॥मील) है। यहां की भूमि उत्तम और उपजाऊ है। अन्न की पैदावार अच्छी होती है। यहां आम बहुत पैदा होता है जो छोटा और बड़ा दो प्रकार का होता है। पहले प्रकार वाला आम छुटपन में हरा रहता है और पकने पर पीला हो जाता है। बड़ी किस्म वाला आम सदा हरा रहता है। इस राज्य में उत्तम कपास और पीला सोना उत्पन्न होता है।" यहां के निवासियों की बाबत वह लिखता है कि "उनका स्वभाव कोमल है और वे दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करते हैं। ये लोग तत्वज्ञान का गुप्तरूप से अध्ययन करना पसन्द करते हैं। ये परोपकारी हैं और विद्या के प्रति बड़े सम्मान का भाव रखते हैं"।

मथुरा की तत्कालीन धार्मिक स्थिति का परिचय हुएन-सांग के निम्नलिखित वर्णन से प्राप्त होता है—"इस नगर में लगभग २० संघाराम हैं, जिनमें २,००० भिक्षु रहते हैं। इन भिक्षुओं में हीनयान और महायान इन दोनों मतों के मानने वाले हैं। यहां पांच देव-मंदिर भी हैं, जिनमें बहुत से साधु पूजा करते हैं। राजा अशोक के बनाये हुए तीन स्तूप यहां विद्यमान हैं। विगत चारों बुद्धों के भी अनेक चिन्ह दिखायी देते हैं। तथागत भगवान्····के साथियों के पवित्र अवशेषों पर भी स्मारक रूप में कई स्तूप बने हुए हैं"। (४२)

हर्ष की मृत्यु के बाद—हर्ष के पश्चात् उत्तर भारत में अनेक छोटे-बड़े राज्य स्थापित हो गये। इस समय से लेकर नवीं शती के प्रारम्भ तक मथुरा का विशेष हाल नहीं मिलता। लगभग ७०० से ७४० ई० तक मथुरा प्रदेश कन्नौज के शासक यशोवर्मा की अधीनता में रहा।

प्रतीहार-शासन में मथुरा—नवीं शती के प्रारम्भ से लेकर दसवीं शती के अन्त तक लगभग २०० वर्षों तक मथुरा प्रदेश गुर्जर प्रतीहार साम्राज्य के अन्तर्गत रहा। इस वंश में मिहिरभोज, महेन्द्रपाल तथा महीपाल बड़े प्रतापी शासक हुए। उनके समय में लगभग समस्त उत्तर भारत एक छत्र के अन्तर्गत हो गया। अधिकांश प्रतीहार शासक वैष्णव या शैव मतावलम्बी थे। उनके लेखों में उन्हें विष्णु, शिव तथा भगवती का भक्त कहा गया है। नागभट द्वितीय, रामभद्र तथा महीपाल सूर्य भक्त थे। प्रतीहारों के शासन काल में मथुरा में हिन्दू पौराणिक धर्म की अच्छी उन्नति हुई। मथुरा में उपलब्ध तत्कालीन कलाकृतियों से इसकी पुष्टि होती है। ई० नवीं शती के प्रारम्भ का एक लेख हाल में श्रीकृष्ण-जन्मस्थान से प्राप्त हुआ है। इससे राष्ट्रकूटों के उत्तर भारत में आने तथा मथुरा में धार्मिक कार्य निष्पन्न होने का पता चलता है।

---

(४२) द्र० टामस वाटर्स—आन युवान च्वांग ट्रैवेल्स इन इंडिया (लंदन, १९०४), जिल्द, १, पृ० ३०१–१३।

महमूद गजनवी का आक्रमण—ग्यारहवीं शती के आरम्भ में गजनी के मूर्तिभंजक सुल्तान महमूद ने भारत पर सत्रह बार हमले किये। अपने नवें आक्रमण का निशाना महमूद ने मथुरा को बनाया। उसका यह आक्रमण १०१७ ई० में हुआ। महमूद के मीरमुंशी अल-उत्बी ने अपनी पुस्तक 'तारीखे यामिनी' में इस आक्रमण का विस्तृत वर्णन किया है, जिससे निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं—

"इस शहर (मथुरा) में सुलतान ने निहायत उम्दा ढंग की बनी हुई एक इमारत देखी, जिसे स्थानीय लोगों ने मनुष्य की रचना न बताकर देवताओं की कृति बतायी। नगर का परकोटा पत्थर का बना हुआ था, उसमें नदी की ओर ऊंचे तथा मजबूत आधार-स्तंभों पर बने हुए दो दरवाजे थे। शहर के दोनों ओर हजारों मकान बने थे, जिनसे लगे हुए देव-मंदिर थे। ये सब पत्थर के बने थे और लोहे की छड़ों द्वारा मजबूत कर दिये गये थे। उनके सामने दूसरी इमारतें बनी थीं, जो सुदृढ़ लकड़ी के खंभों पर आधारित थीं। शहर के बीच में सभी मंदिरों से ऊंचा एवं सुन्दर एक मंदिर था, जिसका पूरा वर्णन न तो चित्र-रचना द्वारा और न लेखनी द्वारा किया जा सकता है। सुल्तान महमूद ने स्वयं उस मंदिर के बारे में लिखा कि यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार की इमारत बनवाना चाहे तो उसे दस करोड़ दीनार (स्वर्ण-मुद्रा) से कम न खर्च करने पड़ेंगे और उसके निर्माण में २०० वर्ष लगेंगे, चाहे उसमें बहुत ही योग्य तथा अनुभवी कारीगरों को ही क्यों न लगा दिया जावे। सुल्तान ने आज्ञा दी कि सभी मंदिरों को जला कर उन्हें धराशायी कर दिया जाय। बीस दिनों तक बराबर शहर की लूट होती रही। इस लूट में महमूद के हाथ खालिस सोने की पांच बड़ी मूर्तियां लगीं, जिनकी आंखें बहुमूल्य माणिक्यों से जड़ी हुई थीं। इनका मूल्य पचास हजार दीनार था। केवल एक सोने की मूर्ति का ही वजन चौदह मन था। इन मूर्तियों तथा चांदी की बहुसंख्यक प्रतिमाओं को सौ ऊंटों की पीठ पर लाद कर गजनी ले जाया गया।"

अलबेरूनी—महमूद के आक्रमण के कुछ समय बाद अलबेरूनी नामक प्रसिद्ध मुसलमान लेखक भारत आया। उसने लिखा है कि मथुरा नगर यमुना-तट पर बसा था। भगवान् वासुदेव कृष्ण के मथुरा में जन्म का तथा उनके चरित का वर्णन अलबेरूनी ने कुछ विस्तार से किया है। परन्तु उसने कई बातें भ्रामक लिखी हैं। एक जगह पर वह लिखता है कि कृष्ण के पिता वसुदेव शूद्र थे और वे जट्टवंश के पशुपालक थे। अपनी पुस्तक में अलबेरूनी ने मथुरा में व्यवहृत संवत् का भी उल्लेख किया है और लिखा है कि मथुरा तथा कन्नौज के राज्यों में श्रीहर्ष का संवत् चलता था।

गाहड़वाल वंश—११ वीं शताब्दी का अन्त होते-होते उत्तर भारत में एक नयी शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ, जो गाहड़वाल वंश के नाम से प्रसिद्ध है। इस वंश की राजधानी कन्नौज रही। मथुरा का प्रदेश भी कन्नौज साम्राज्य के अन्तर्गत रहा।

मथुरा में श्रीकृष्ण-जन्मस्थान पर सं० १२०७ (११५० ई०) में इस वंश के राजा विजयचन्द्र द्वारा एक भव्य मंदिर का निर्माण कराया गया। उस समय विजयचन्द्र संभवतः युवराज था और अपने पिता की ओर से मथुरा का शासक था। सं० १२०७ के अभिलेख में राजा का नाम 'विजयपालदेव' दिया है। 'पृथ्वीराज-रासो' में भी विजयचन्द्र का नाम विजयपाल मिलता है।

११९४ ई० में कुतुबुद्दीन की अध्यक्षता में मुसलमानों ने कन्नौज राज्य पर चढ़ाई की। चंदावर (जि०इटावा) के युद्ध में विजयचन्द्र के प्रख्यात पुत्र जयचन्द्र ने बड़ी बहादुरी से मुसलमानों का सामना किया। मुसलमान लेखकों के विवरणों से पता चलता है कि चंदावर का युद्ध भयंकर हुआ। कुतुबुद्दीन की फौज में पचास हजार सवार थे। जयचन्द्र ने अपनी सेना का संचालन स्वयं किया, परन्तु अन्त में वह पराजित हुआ और मारा गया। अब कन्नौज से लेकर बनारस तक मुसलमानों का अधिकार हो गया। कन्नौज, असनी तथा बनारस में बड़ी लूट-मार हुई।

इस प्रकार ११९४ई० में कन्नौज साम्राज्य का अन्त हुआ और मथुरा प्रदेश भी मुसलमानों के अधिकार में चला गया।

———

अध्याय ७

परवर्ती इतिहास

(११९४ से अब तक)

११९४ से १५२६ ई० तक मथुरा दिल्ली के मुसलमान शासकों के आधिपत्य में रहा। गुलाम, खिलजी, तुगलक, सय्यद और लोदी वंश ने क्रमशः उत्तर भारत पर शासन किया। सिकन्दर लोदी के समय (१४८८–१५१७ ई०) में मथुरा की बड़ी बरबादी हुई। यहां के मंदिर तथा धार्मिक स्थान नष्ट-भ्रष्ट किये गये। नगर में यमुना के मुख्य घाटों के ठीक ऊपर सिकन्दर ने मस्जिदों और दूकानों का निर्माण कराया। राजा विजयपाल द्वारा जन्म-स्थान पर निर्मित मंदिर भी सिकन्दर की धर्मांधता का शिकार हुआ।

इस काल के मुसलमान लेखकों ने प्रायः मथुरा के प्रति उपेक्षा और घृणा का भाव प्रकट किया है। इस नगर को 'बुतपरस्ती का काबा' कहा जाता था। कई मुसलमान शासकों ने अपने फौजदारों को आदेश दिये थे कि वे बुतपरस्ती (मूर्तिपूजा) को समाप्त करने के लिए सब प्रकार से प्रयत्न करें। परन्तु इन सब बातों के बावजूद हिन्दू समाज जीवित रहा। विवेच्य काल में कुछ ऐसे संत हुए जिन्होंने हिन्दू जाति में नयी शक्ति का संचार किया। रामानन्द, कबीर, नानक, चैतन्य, मीरा, वल्लभाचार्य तथा अन्य अनेक विभूतियों ने शुद्ध भाव और भक्ति का प्रशस्त मार्ग जनता को दिखाया। वैष्णव धर्म की जो कल्याणी धाराएं इन महानुभावों द्वारा प्रवाहित की गयीं उन्होंने इस देश को अपने माधुर्य से आप्लावित कर दिया। लोकहित के लिए ऐसे साहित्य की सृष्टि इन महात्माओं ने की जिसने भारतीय जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया।

मुगल काल

(१५२६ से १७१८ ई० तक)

१५२६ के अंत से १७१८ ई० तक लगभग दो शताब्दियों तक मथुरा मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत रहा। अकबर का शासन काल (१५५६–१६०५ ई०) मथुरा के इतिहास में उल्लेखनीय है। इस समय यहां जो सांस्कृतिक पुनरुत्थान हुआ उससे फिर साहित्य, कला और संगीत की उन्नति हुई। मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, गोवर्द्धन आदि तीर्थ-स्थानों का महत्व बढ़ा और उनमें अनेक हिन्दू मंदिरों का निर्माण हुआ। प्रसिद्ध है कि रूप, सनातन, जीव, हरिदास आदि भक्तों की ख्याति सुन कर अकबर स्वयं वृन्दावन गया था। आंबेर तथा अन्य कई राज्यों के शासकों द्वारा वृन्दावन तथा गोवर्धन में अनेक भव्य इमारतें अकबर के शासन-काल में बनीं। ब्रज की प्रसिद्ध रासलीला तथा वन-यात्रा का प्रारम्भ भी लगभग इसी समय हुआ। अकबर और उसके पुत्र जहांगीर के समय में ब्रजभाषा-साहित्य की बड़ी उन्नति हुई। सूरदास, नन्ददास आदि अष्टछाप के कवियों तथा हित हरिवंश, हरिदास, श्रीभट्ट, हरिराम व्यास, ध्रुवदास, रसखान आदि ने अपनी रचनाओं द्वारा ब्रज भाषा को बहुत समृद्ध किया।

जहांगीर के राज्यकाल (१६०५–२७ ई०) में ओरछा के बुंदेला राजा वीरसिंहदेव के द्वारा तैंतीस लाख रुपया व्यय करके श्रीकृष्ण-जन्मस्थान पर केशवदेव का विशाल मंदिर बनवाया गया। वृन्दावन में भी कई सुन्दर मंदिर जहांगीर के समय में बने। शाहजहां के पुत्र दाराशिकोह ने केशवदेव मंदिर के चारों ओर पत्थर का एक आकर्षक कटहरा बनवा दिया। बरनियर, मनूची, टैवरनियर आदि विदेशी यात्रियों ने इस मंदिर की बड़ी प्रशंसा की है। टैवरनियर के विवरण से ज्ञात होता है कि यह मंदिर भारत भर में अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का माना जाता था और ५–६ कोस की दूरी से दिखायी पड़ता था। यह एक बड़े अठपहलू चबूतरे के ऊपर बना था।

शाहजहां के बाद उसके लड़के औरंगजेब (१६५८–१७०७ ई०) ने अपने पूर्वजों की नीति को उलट दियाऔर हिन्दुओं के प्रति अत्याचार प्रारम्भ कर दिया। १६६६ ई० में उसने मथुरा के केशवदेव मंदिर में

दाराशिकोह द्वारा लगाये गये कटहरे को अपने सूबेदार अब्दुन्नबी द्वारा तुड़वा डाला । इसके लगभग चार साल बाद उसने विशाल केशवदेव मंदिर का भी ध्वंस कर दिया और उसके स्थान पर एक मस्जिद बनवा दी । मथुरा-वृन्दावन आदि तीर्थ-स्थानों की बड़ी बरबादी हुई । अतः वहां की प्रमुख मूर्तियां सुरक्षा के लिए विभिन्न रजवाड़ों में भेज दी गयीं । औरंगजेब ने मथुरा और वृन्दावन के नाम भी बदल कर क्रमशः 'इस्लामाबाद' और 'मोमीनाबाद' रख दिये ! परन्तु ये नाम प्रचलित न हो सके ।

जाट-मरहठा-आधिपत्य

(१७१८–१८०३ ई०)

जाटों का उत्थान—औरंगजेब के अंतिम समय में ब्रज प्रदेश के जाटों ने अपनी शक्ति बढ़ा ली थी । गोकुला, राजाराम, चूड़ामन आदि जाट सरदारों ने मुगल शासन को कमजोर बनाने में सभी प्रकार के प्रयत्न किये । धीरे-धीरे ब्रज के एक बड़े भाग पर चूड़ामन का आधिपत्य स्थापित हो गया । मथुरा भी इसमें सम्मिलित था । उसके लड़के बदन सिंह के समय में जाटों का प्रभुत्व बढ़ा ।

नादिरशाह का आक्रमण—१७३९ ई० में नादिरशाह का दिल्ली पर भयंकर आक्रमण हुआ । लूट और कत्लेआम करने के बाद उसके सिपाही मथुरा तक आ धमके । उन्होंने मथुरा-वृन्दावन में भी लूट-मार की । कहते हैं कि ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि घनआनन्द को भी उन्होंने वृन्दावन में मार डाला ।

बदन सिंह के पुत्र सूरजमल के शासन काल (१७५५–६३ ई०) में जाट शक्ति का बड़ा उत्कर्ष हुआ । उसके समय में दक्षिण से मरहठों के आक्रमण मुगल साम्राज्य पर लगातार होते रहे । जाटों से भी मरहठों की अनबन हो गयी और दोनों शक्तियों में कई बार युद्ध हुए ।

अहमदशाह अब्दाली द्वारा मथुरा की बरबादी—अहमदशाह अब्दाली अफ़गानिस्तान में नादिरशाह का उत्तराधिकारी हो गया था । उसने दिल्ली पर अधिकार करने के बाद १ मार्च, १७५७ ई० को मथुरा पर भीषण आक्रमण किया । उस दिन होली का त्योहार था । चार घंटों तक लगातार हिन्दुओं की मार-काट होती रही । एक प्रत्यक्षदर्शी मुसलमान ने लिखा है कि सड़कों और बाजारों में सर्वत्र हलाल किये हुए लोगों के धड़ पड़े थे और सारा मथुरा शहर जल रहा था । कितनी ही इमारतें धराशायी कर दी गईं । यमुना का जल नर-संहार के बाद लगातार सात दिनों तक लाल रंग का बहता रहा । मथुरा के बाद महावन और वृन्दावन में लूट-मार हुई ।

१७७० ई० में मरहठों ने जाटों को गहरी पराजय दी । इस समय से मरहठों का सिक्का उत्तर भारत पर पूरी तरह जम गया । शीघ्र ही मथुरा पर भी उनका पूरा अधिकार स्थापित हो गया । डीग, बयाना आदि जाटों के प्रसिद्ध किले मरहठों के अधिकार में आ गये ।

महादजी सिंधिया—मथुरा के मरहठा शासकों में महादजी सिंधिया का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । उनके समय में मरहठा शक्ति का बड़ा प्रसार हुआ । उन्होंने मथुरा को अपना केंद्र बनाया । मथुरा और ब्रज के अन्य स्थानों से महादजी को बड़ा प्रेम था । उन्होंने ब्रज के मंदिरों को उन्मुक्त हस्त से दान दिया और वहां के अनेक तीर्थ-स्थलों का पुनरुद्धार कराया । श्रीकृष्ण-जन्मस्थान के समीप विशाल पोतराकुण्ड का पुनर्निर्माण सिंधिया द्वारा कराया गया । इस कुंड के किनारे पर बैठ कर महादजी अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की स्तुति के पद गाया करते थे । उनकी इच्छा थी कि जन्मस्थान पर भगवान् केशव के मंदिर का निर्माण फिर से किया जाय । पर यह इच्छा पूरी न हो सकी । महादजी के प्रयत्नों से जनवरी, १७९१ ई० तक मथुरा तथा ब्रज के अन्य तीर्थ-स्थानों को मरहठा-शासन के प्रमुख पेशवा के अधीन कर दिया गया ।

ब्रिटिश आधिपत्य—१७९५ ई० में महादजी की मृत्यु के बाद मरहठा शक्ति का ह्रास तेजी से होने लगा। मरहठा सरदारों में आपसी वैमनस्य बढ़ता गया। इधर अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कंपनी अपना प्रभाव बराबर बढ़ाती जा रही थी। मरहठों की आपसी कलह तथा उनमें योग्य नेताओं के अभाव का अंग्रेजों ने पूरा लाभ उठाया। लासवाड़ी, असई आदि के युद्धों में मरहठों की पराजय हुई। ३० दिसम्बर, १८०३ को सर्जी अंजनगांव की संधि द्वारा मथुरा पर पूर्णतया अंग्रेजी शासन स्थापित हो गया। १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम में तथा विभिन्न क्रांतिकारी आंदोलनों में मथुरा ने महत्वपूर्ण भाग लिया।

१५ अगस्त, १९४७ ई० को भारत की स्वतंत्रता के साथ मथुरा को भी ब्रिटिश बंधन से मुक्ति मिली। तबसे इस नगर का आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास बराबर जारी है।

अध्याय ८

मथुरा में कला का विकास

मथुरा में ललित कलाओं के विकास का एक लम्बा इतिहास है। भारत का प्राचीन धार्मिक केन्द्र होने के कारण मथुरा में ईसवी सन् से कई सौ वर्ष पहले स्थापत्य और मूर्तिकला का प्रारम्भ हो चुका था। इस नगर की गणना भारत के प्रधान कला-केन्द्रों में की जाने लगी थी और मथुरा की एक विशेष कलाशैली बन गयी थी। ईरान और यूनान की संस्कृतियों का भारतीय संस्कृति के साथ जो समन्वय हुआ उसका मूर्त रूप हमें मथुरा की प्राचीन कला में दिखलायी पड़ता है। शक और कुषाण वंशी राजाओं के शासन-काल में मथुरा की मूर्ति कला को अधिक विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। इस समय से जैन, बौद्ध तथा वैदिक—भारत के इन तीनों प्रधान धर्मों को यहां के सहिष्णुतापूर्ण वातावरण में साथ-साथ बढ़ने का अच्छा अवसर मिला। यह मथुरा के इतिहास में एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना कही जा सकती है। ईसवी पूर्व पहली शती से लेकर गुप्त काल के अन्त तक उक्त तीनों धर्मों से संबंधित कलावशेष बड़ी संख्या में उपलब्ध हुए हैं। गुप्त काल के बाद भी ब्रज में मूर्तिकला और वास्तुकला की उन्नति कई शताब्दियों तक जारी रही, यद्यपि उसमें पहले-जैसा सौष्ठव और निजस्व न रहा। दिल्ली सल्तनत के लगभग सवा तीन सौ वर्षों के आधिपत्य-काल में इस कलात्मक विकास में गतिरोध उत्पन्न हुआ। मुगल काल में अकबर के समय ब्रज में जो सांस्कृतिक पुनरुत्थान हुआ उसके फलस्वरूप साहित्य, संगीत तथा चित्रकला का फिर से उद्धार हो सका। यहां मथुरा की वास्तु एवं मूर्तिकला का संक्षिप्त विवेचन किया जाता है।

स्थापत्य या वास्तुकला

जैन तथा बौद्ध इमारतें—मथुरा में जैन तथा बौद्ध धर्म के बड़े केन्द्र स्थापित हो जाने से यह युक्तिसंगत था कि यहां अनेक स्तूपों तथा विहारों का निर्माण होता। मथुरा के कंकाली टीला से प्राप्त एक मूर्ति की चौकी पर खुदे हुए द्वितीय शती के एक लेख से पता चला है कि उस समय से बहुत पूर्व मथुरा में एक बड़े जैन-स्तूप का निर्माण हो चुका था। लेख में उस स्तूप का नाम 'देव निर्मित बौद्ध स्तूप' दिया है। वर्तमान कंकाली टीला की भूमि पर उस समय से लेकर ११०० ईसवी तक जैन इमारतों और मूर्तियों का निर्माण होता रहा। बौद्ध इमारतों की संख्या भी बड़ी थी। सम्राट् अशोक, कनिष्क तथा अन्य शक-कुषाण शासकों द्वारा मथुरा नगर तथा उसके आस-पास कितने ही स्तूपों तथा विहारों का निर्माण किया गया।

जब चौथी शती में चीनी यात्री फाह्यान मथुरा आया तब उसने यमुना नदी के दोनों किनारों पर बीस बौद्ध विहारों को देखा। उसने यहां के छः बड़े बौद्ध स्तूपों का भी उल्लेख किया है। मथुरा से प्राप्त शिलालेखों से अब तक अनेक बौद्ध विहारों का पता चला है। उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—

१—हुविष्क विहार, २—स्वर्णकार विहार, ३—श्री विहार, ४—चेतीय विहार, ५—चुतक विहार, ६—अपानक विहार, ७—मिहिर विहार, ८—गुहा विहार, ९—क्रोष्टकीय विहार, १०—रोषिक विहार, ११—ककाटिका विहार, १२—प्रावारिक विहार, १३—यशा विहार, १४—खण्ड विहार।

खेद है कि इन विहारों में से एक भी इस समय नहीं बचा। इन इमारतों के निर्माण में ईंटों और पत्थरों का प्रयोग होता था। इनका प्रकार सांची, तक्षशिला, सारनाथ आदि स्थानों के बौद्ध विहारों-जैसा रहा होगा। मथुरा में कुषाण काल में सबसे अधिक विहारों का निर्माण हुआ, जैसा कि तत्कालीन अभिलेखों से सिद्ध होता है।

ब्रज के प्राचीन स्तूप भी ईंट और पत्थर के बने हुए थे। इनमें से सबसे नीचे एक चौकोर आधार बनाया जाता था। उसके ऊपर प्रायः गोलाकार रचना (अंड) होती थी। शीर्ष पर दंड (यष्टि) के सहारे छत्र रहता था। कभी-कभी छत्रों की संख्या कई होती थी। स्तूप का बाहरी भाग विविध भांति के उत्कीर्ण शिलापट्टों से सजाया जाता था। स्तूप की परिक्रमा के लिए बाड़ा (वेष्टनी) बनाया जाता था, जिसे 'वेदिका' कहते थे। इसमें थोड़ी-थोड़ी दूर पर खड़े खम्भे आड़े पत्थरों (सूची) द्वारा जोड़े जाते थे। खम्भों के शिरों पर जो पत्थर रखे जाते थे वे 'उष्णीष' या 'मूर्धस्थ पाषाण' कहलाते थे। वेष्टनी या वेदिका के प्रायः सभी पत्थर विविध भांति की उकेरी हुई मूर्तियों और अलंकरणों से युक्त होते थे। भीतर जाने-आने के लिए वेदिका के प्रायः चारों ओर एक-एक तोरण-द्वार बना रहता था।

स्तूपों में तीर्थंकरों या भगवान् बुद्ध अथवा उनके प्रमुख शिष्यों के पवित्र अवशेष—हड्डी, राख, नख, बाल आदि—रखे जाते थे। जब बुद्ध का देहावसान (निर्वाण) हुआ तब उनके अवशेषों को आठ भागों में विभक्त किया गया और प्रत्येक के ऊपर एक-एक स्तूप की रचना की गयी। इसके बाद स्तूप-निर्माण की परम्परा जारी रही। सम्राट् अशोक के लिए कहा जाता है कि उसने भारत के विभिन्न स्थानों पर ८४,००० स्तूपों का निर्माण कराया। उसने मथुरा में भी कई बड़े-बड़े स्तूप बनवाये। इनमें से तीन का उल्लेख चीनी यात्री हुएन-सांग ने किया है। इस चीनी यात्री ने बुद्ध भगवान् के साथियों के अवशेषों पर निर्मित स्तूपों की भी चर्चा की है। अशोक और उसके बाद निर्मित कुछ भग्नावशिष्ट स्तूप सांची, तक्षशिला, सारनाथ आदि स्थानों में विद्यमान हैं। इनमें कई तो बहुत विशाल हैं। मथुरा में समय-समय पर छोटे-बड़े जिन स्तूपों की रचना की गयी, उनमें से कई के अवशेष उपलब्ध हुए हैं।

हिंदू मंदिर—मन्दिरों के निर्माण का आरम्भ तथा उनका विकास स्तूपों से भिन्न रूप में हुआ। स्तूपों की रचना पवित्र अवशेषों के ऊपर होती थी। वाल्मीकि रामायण में सम्भवतः इसी कारण उनके लिए 'श्मशान चैत्य' नाम आया है। परन्तु मंदिर देवता के निवास-स्थान माने जाते हैं और इसलिए उन्हें 'देवालय' कहा गया है।

मंदिर के भीतर एक या अनेक देवों की मूर्तियों का होना तथा उनकी पूजा होना अनिवार्य माना जाता था। मंदिर की रचना-शैली भी स्तूप से पृथक् थी। शिखर-शैली का होना मंदिर का निजत्व है, जो सुमेरु, त्रिकूट, कैलाश आदि पर्वतों से लिया गया प्रतीत होता है। मन्दिर के बहिर्भाग को प्रायः विविध अलंकरणों तथा देव, यक्ष, किन्नर, अप्सरादि की प्रतिमाओं से सजाया जाता था। मथुरा में सम्भवतः जैनों तथा बौद्धों के स्तूपों का निर्माण मन्दिरों के बनने से पहले प्रारम्भ हुआ। यहां हिन्दुओं के सबसे प्राचीन जिस मन्दिर का उल्लेख मिला है वह राजा शोडास के राज्यकाल में निर्मित हुआ। ऐसा एक सिरदल पर उत्कीर्ण शिलालेख से ज्ञात हुआ है। इस लेख में लिखा है कि वासुदेव-कृष्ण का चतुःशाला मन्दिर, तोरण तथा वेदिका का निर्माण वसु नामक व्यक्ति के द्वारा महाक्षत्रप शोडास के शासन-काल में सम्पन्न हुआ। यह मन्दिर उस स्थान पर बनवाया गया जहां भगवान् कृष्ण का जन्म माना जाता है। हो सकता है कि इसके पहले श्रीकृष्ण का कोई मन्दिर मथुरा में रहा हो, पर उसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिला। अन्य हिन्दू देवी-देवताओं की अनेक कुषाणकालीन मूर्तियां ब्रज में मिली हैं। संभव है कि उनमें से कुछ के मन्दिरों का निर्माण इस समय या इसके कुछ पहले आरम्भ हो गया हो।

गुप्तकाल में मथुरा में हिन्दू मन्दिरों का निर्माण बड़ी संख्या में हुआ। श्रीकृष्ण-जन्मस्थान पर परम भागवत चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासन-काल में एक भव्य मंदिर की रचना की गयी। चीनी यात्री हुएन-सांग ने अपने समय में मथुरा के अनेक हिन्दू मंदिरों के अस्तित्व का उल्लेख किया है, जिनमें बहुत से साधु पूजा करते थे।

दुर्भाग्य से मथुरा में प्राचीन स्थापत्य का कोई ऐसा समूचा उदाहरण आज नहीं बचा, जिससे हम धार्मिक इमारतों, प्रासादों, साधारण मकानों आदि की निर्माण-शैली की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त कर सकते। इमारती पत्थर एवं अन्य अवशेषों के रूप में थोड़ी-बहुत सामग्री उपलब्ध हुई है, जिसके आधार पर हम मथुरा की कुछ इमारतों की रूप–रेखा जान सकते हैं। प्राचीन प्रासाद या बड़े मकान कई तलों के होते थे। नीचे के खंड से ऊपर जाने के लिए जीने (सोपानमार्ग) होते थे। जीने के किनारों (पार्श्व) पर वेदिका स्तम्भ लगे होते थे। मकानों में बैठक का कमरा, स्नानागार, भोजन-गृह, शयन-गृह, शृंगार-कक्ष और अन्तःपुर प्रायः अलग-अलग होते थे। यथास्थान खिड़कियां (गवाक्ष) भी होती थीं।

मकानों में जो चौखट, दरवाजे, खम्भे आदि लगाये जाते थे उन्हें लता-वृक्ष, पशु-पक्षी, कमल, मंगल-घट, कीर्तिमुख, स्वस्तिक आदि अलंकरणों तथा विविध देवी-देवताओं, यक्ष-किन्नरों आदि की प्रतिकृतियों स अलंकृत किया जाता था। ईंट की बनी हुई इमारतों पर बाहर की ओर अनेक प्रकार की बेलबूटेदार ईंटें लगाई जाती थीं, जिन पर धार्मिक एवं लौकिक दृश्यों के कलात्मक चित्रण होते थे।

ग्यारहवीं शती के आरम्भ में मथुरा के विशाल मन्दिरों को बड़ी क्षति पहुंची। महमूद गजनवी के मीर मुंशी अल-उत्बी के लेख से ज्ञात होता है कि उस समय मथुरा में हिन्दू मन्दिरों की संख्या बहुत बड़ी थी। मथुरा को जीतने के बाद महमूद द्वारा कितने ही मंदिर धराशायी किये गये और उनकी मूर्तियां तोड़ी गयीं। मंदिरों की अपार सम्पत्ति लूटकर महमूद गजनी लौटा।

बारहवीं शताब्दी में मथुरा और उसके आस-पास अनेक बड़े मंदिर थे,जिनका विध्वंस मुसलमान आक्रान्ताओं ने किया। इनमें राजा विजयपाल देव द्वारा ११५० ई० में श्रीकृष्ण-जन्मस्थान पर बनवाया गया प्रसिद्ध मंदिर भी था। बारहवीं शती से लेकर मुगल सम्राट् अकबर के समय तक ब्रज में मंदिरों का निर्माण नहीं के बराबर रहा। अकबर और जहांगीर के समय में मथुरा-वृन्दावन में कुछ मंदिर तथा अन्य इमारतें बनीं, जिनमें से कई अब भी विद्यमान हैं–

१—मथुरा का 'सती बुर्ज'—यह ५५ फुट ऊंचा एक चौखण्डा बुर्ज है। जयपुर के राजा भारमल (बिहारीमल) की रानी इसी स्थान पर अपने मृत पति के साथ सती हुई थीं। उनके लड़के राजा भगवान दास ने अपनी माता की स्मृति में सन् १५७४ ई० में इस स्मारक का निर्माण करवाया। इसका शिखर पहले अधिक ऊंचा था। पर औरंगजेब के समय में उसका ऊपरी भाग तुड़वा दिया गया।

२—गोविन्ददेव मंदिर, वृन्दावन—वृन्दावन के प्राचीन मंदिरों में यह मंदिर सर्वश्रेष्ठ है। कहा जाता है कि सम्राट् अकबर वृन्दावन आये तो वे इस पुण्य भूमि को देख कर बहुत प्रभावित हुए और उनकी अनुमति से यहां गोविन्द देव आदि कई मन्दिरों का निर्माण कराया गया। कहते हैं कि इस कार्य में राजकीय कोष से भी कुछ सहायता दी गयी। गोविन्ददेव के मन्दिर का निर्माण कछवाहा नरेश मानसिंह ने अपने दोनों गुरु रूप और सनातन के आदेश से करवाया था। यह मन्दिर बारह फुट ऊंची कुर्सी के ऊपर बना है और इसकी लम्बाई २०० फुट और चौड़ाई १२० फुट है। औरंगजेब ने ऊपर की बुर्जें तुड़वा दीं। बाद में ऊपरी भाग की आंशिक मरम्मत करायी गयी।

३—मदन मोहन मंदिर—यह शिखराकार मंदिर वृन्दावन में कालीदह घाट के पास है। इसकी भी निर्माण-शैली बहुत सुन्दर है। शिखर के ऊपर का आमलक अब तक सुरक्षित है।

४—गोपीनाथ मंदिर—मदनमोहन के मंदिर से इसकी बनावट बहुत मिलती-जुलती है।

५—जुगल किशोर मंदिर—यह मंदिर केशी घाट के पास है और अन्य प्राचीन मंदिरों की अपेक्षा अच्छी दशा में है। इसका भी शीर्ष (आमलक) सुरक्षित है। इस मंदिर का निर्माण १६२७ ई० में हुआ।

६—हरदेव मन्दिर, गोवर्धन—यह मंदिर कछवाहा राजा मानसिंह के द्वारा बनवाया गया था। सोलहवीं शताब्दी के स्थापत्य का यह एक अच्छा नमूना है।

उपर्युक्त सती बुर्ज तथा मन्दिर लाल पत्थर के बने हुए हैं। इनकी रचना-शैली हिन्दू और मुगल स्थापत्य के सामंजस्य का सुन्दर उदाहरण है महावन आदि कतिपय अन्य स्थानों में भी मध्यकालीन मंदिरों के कुछ खंडित अंश मिलते हैं।

मूर्ति कला

भारतीय विचार-धारा में ईश्वर क सगुण रूप को प्रधानता दी गयी है। भगवान् कृष्ण की लीला-भूमि ब्रज में सगुण उपासना को अधिक महत्व प्राप्त होना स्वाभाविक था। यहां के साहित्य और शिल्प कला में श्री कृष्ण के विविध चरितों का चित्रण दीर्घकाल तक होता रहा। साथ ही हिन्दू धर्म के अन्य देवी-देवताओं को भी मूर्त रूप प्रदान किया गया। ईसवी पूर्व दूसरी शती से लेकर प्रायः बारहवीं शती के अन्त तक मथुरा में हिन्दू देवों की प्रतिमाएं बनाई जाती रहीं। गुप्त वंशी शासक भागवत धर्म के अनुयायी थे। इस धर्म ने सहिष्णुता और समन्वय की जो भावना फैलाई उसका प्रभाव तत्कालीन शिल्प कला पर भी स्पष्ट दिखायी पड़ता है। भागवत धर्म संबंधी मूर्तियों के साथ-साथ शैव मूर्तियां भी मथुरा के अनेक स्थानों से प्राप्त हुई हैं। मध्यकाल में ब्रज में पौराणिक धर्म की प्रधानता होने से यहां की मूर्ति कला में उसका प्रभाव परिलक्षित होता है।

मथुरा में कंकाली टीला तथा ब्रज के अन्य कई स्थानों से जैन धर्म सम्बन्धी विशाल शिल्प-सामग्री भी प्राप्त हुई है। इसी प्रकार कुषाण काल के आरम्भ से लेकर गुप्त काल के अन्त तक के जो बौद्ध अवशेष यहां मिले हैं उनसे बौद्ध धर्म के क्रमिक विकास का पता चलता है। विविध धार्मिक सम्प्रदायों में थोड़ा-बहुत मतभेद स्वाभाविक था, पर वे आपस में मिल कर रहते थे। हम देखते हैं कि मथुरा के सहिष्णुतापूर्ण वातावरण में भारत के सभी धर्मों को साथ-साथ शताब्दियों तक विकसित होने का अवसर मिला। यहां की समन्वयात्मक संस्कृति ने इन धर्मों के पारस्परिक भेदभावों को दूर करने में महत्वपूर्ण योग दिया।

भारत का एक प्रमुख धार्मिक तथा कला-केन्द्र होने के नाते मथुरा को बड़ी ख्याति प्राप्त हुई। ईरान, यूनान और मध्य एशिया के साथ मथुरा का सांस्कृतिक संपर्क बहुत समय तक रहा। तक्षशिला की तरह मथुरा भी विभिन्न संस्कृतियों के पारस्परिक मिलन का एक बड़ा केन्द्र हो गया। इसके फलस्वरूप विदेशी कला की अनेक विशेषताओं को मथुरा के कलाकारों ने ग्रहण किया और उन्हें देशी तत्वों के साथ मिलाने में कुशलता का परिचय दिया। तत्कालीन एशिया तथा यूरोप की संस्कृति के अनेक उपादान मथुरा-कला के साथ घुल-मिल गये। कुषाणकालीन मथुरा की मूर्ति कला में हमें यह बात स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है।

प्राचीन मथुरा में मन्दिरों तथा मूर्तियों के निर्माण में प्रायः लाल बलुए पत्थर का प्रयोग होता था। यह पत्थर मथुरा के समीप तांतपुर, फतहपुर सीकरी, रूपवास आदि स्थानों में मिलता है और मूर्ति गढ़ने के लिए मुलायम होता है। नीचे मथुरा की मूर्ति कला का किंचित् परिचय दिया जाता है-—

हिन्दू मूर्तियां

हिन्दू मूर्ति-कला के विकास की दृष्टि से मथुरा का स्थान बहुत ऊंचा है। यहीं सर्वप्रथम अनेक देवों की प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। पौराणिक देवी-देवताओं के मूर्ति-विज्ञान के अध्ययन के लिए यहां की कला में महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध है।

ब्रह्मा—मथुरा संग्रहालय में ब्रह्मा की कुषाणकालीन दो मूर्तियां हैं। इनमें सबसे दर्शनीय तथा अद्भुत मूर्ति ३८२ संख्यक है। इसमें ब्रह्मा के तीन मुख एक सीध में दिखाये गये हैं और चौथा बीच वाले सिर

के पीछे। बौद्ध मूर्तियों की तरह इसमें भी छायामंडल तथा अभय मुद्रा दिखाये गये हैं। ब्रह्मा की अनेक मध्यकालीन मूर्तियां भी मथुरा से मिली हैं। इनमें महावन से प्राप्त डी० २२ संख्यक प्रतिमा उल्लेखनीय है, जिसमें ब्रह्मा अपनी पत्नी सावित्री के साथ बैठे अंकित हैं।

शिव—शिव की विविध मूर्तियां मथुरा कला में मिली हैं। कुषाण शासकों में विम कैडफाइसिस, वासुदेव, कनिष्क तृतीय आदि के सिक्कों पर नन्दी सहित शिव की एक या कई मुख वाली मूर्तियां मिलती हैं। कुषाणकालीन शिवलिंग की एक मूर्ति मथुरा से मिली है, जिसकी पूजा करते हुए शक लोग दिखाये गये हैं (सं० २६६१)। मथुरा में मुखलिंग रूप में भी शिव की उपासना प्रचलित थी। कुषाण तथा गुप्त काल के कई सुन्दर शिवलिंग यहां प्राप्त हुए हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण वह है जिसमें खड़े हुए चतुर्भुजी शिव को दिखाया गया है। २५२८ संख्यक मूर्ति गुप्तकालीन एक मुखी लिंग तथा ५१६ संख्यक पंचमुखी शिवलिंग के अच्छे उदाहरण हैं। उत्तर गुप्तकालीन एक मूर्ति (सं० २०८४) में नन्दी के सहारे खड़े हुए शिव-पार्वती पत्थर के सामने तथा पृष्ठ भाग पर बड़ी सुन्दरता के साथ आलेखित हैं। शिव-पार्वती की एक दूसरी मूर्ति (सं० २५७७) में उन्हें कैलाश पर्वत पर बैठे हुए दिखाया गया है। नीचे रावण पहाड़ को उठा रहा है, जिससे पर्वत का एक कोना ऊपर उठ गया है। पार्वती की भयभीत मुद्रा तथा शिव का क्रुद्ध भाव दर्शनीय है। गुप्तकाल की अर्द्धनारीश्वर की मूर्तियां भी मिली हैं (सं० ३६२,७२२), जिनमें आधा अंग शिव का और शेष पार्वती का अत्यन्त कलात्मक ढंग से दिखाया गया है। कई मूर्तियाँ हरिहर की भी प्राप्त हुई हैं।

विष्णु—विष्णु की कुषाणकालीन कई मूर्तियां मथुरा से ऐसी मिली हैं जैसी भारत में अन्यत्र प्राप्त नहीं होतीं। ६३३ संख्यक चतुर्भुजी विष्णु मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। इसकी निर्माण-शैली प्रारम्भिक कुषाणकालीन बोधिसत्व प्रतिमाओं से बहुत मिलती है। विष्णु का एक हाथ अभय मुद्रा में है और दूसरे में वे अमृतघट लिये हैं। शेष दो हाथों में गदा तथा चक्र हैं। इस प्रकार यहां विष्णु के साथ केवल दो आयुध हैं, बाद में शंख तथा पद्म भी मिलने लगते हैं। एक दूसरी मूर्ति (सं० २५२०) में भी विष्णु के ऐसे ही रूप का चित्रण है, जिसमें उन्हें बोधिसत्व मैत्रेय के समान अंकित किया गया है। विष्णु की कुषाणकालीन दो अष्टभुजी मूर्तियां भी मथुरा-कला में मिली हैं (सं० १०१० तथा ३५२०), जो मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से बड़े महत्व की हैं।

गुप्तकाल की एक मूर्ति (ई० ६) में चतुर्भुजी विष्णु को ध्यान-मुद्रा में दिखाया गया है। उनके सिर पर अलंकृत किरीट मुकुट है। वे कुण्डल, मुक्ताहार, भुजबन्ध तथा वैजयंती भी धारण किये हैं। उनके लहरदार वस्त्र बड़े रोचक ढंग से प्रदर्शित किये गये हैं। यह मूर्ति गुप्तकालीन कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। मूर्ति के ऊपर एक छत्र है, जो पूर्ण विकसित कमलों तथा पत्र-रचना से अलंकृत है। २५२५ संख्यक विष्णु-मूर्ति भी गुप्त कला का एक उत्तम उदाहरण है। यह महाविष्णु (नृसिंह-वराह-विष्णु) की मूर्ति है। बीच में भगवान् विष्णु का मुख है तथा अगल-बगल नृसिंह तथा वराह अवतारों के मुख हैं। २८८४ संख्यक मूर्ति भी ऐसी ही है, पर उसमें महाविष्णु के अंकन के साथ उनके विराट रूप के भी दर्शन हैं। मथुरा कला में मिट्टी की भी कई सुन्दर विष्णु-मूर्तियां प्राप्त हुई हैं।

कृष्ण-बलराम—भगवान् कृष्ण की लीलाभूमि ब्रज में उनकी प्राचीन मूर्तियां बहुत कम प्राप्त हुई हैं। यह सचमुच आश्चर्यजनक है। उनके जीवन से संबंध रखने वाली जो सबसे प्राचीन मूर्ति मथुरा में मिली है वह ई० दूसरी शताब्दी की है (सं० १३४४)। इस शिलापट्ट पर नवजात शिशु कृष्ण को एक सूप में रख कर वसुदेव गोकुल जाने के लिए यमुना पार करते हुए दिखाये गये हैं। यमुना नदी का बोध धारीदार लकीरों तथा जल-जन्तुओं के द्वारा बड़ी सुन्दरता के साथ कराया गया है। ई० ६०० के लगभग की कृष्ण की एक अन्य मूर्ति प्राप्त हुई है (डी० ४७), जिसमें वे अपने हाथ पर गोवर्धन उठाये हुए चित्रित हैं। पर्वत के नीचे गायें तथा ग्वालबाल खड़े हैं। कुछ वर्ष पूर्व कंस किला से श्रीकृष्ण की एक गुप्तकालीन मूर्ति मिली है (सं० ३३७४)। इसमें उन्हें कालियनाग का दमन करते हुए दिखाया गया है। लखनऊ संग्रहालय में भी कालियदमन की एक प्रतिमा है। कृष्ण की मध्यकालीन कुछ मूर्तियां भी मिली हैं, पर वे प्रायः साधारण कोटि की हैं।

बलराम की प्राचीन मूर्तियां अपेक्षाकृत अधिक मिली हैं। मथुरा कला में उनकी सबसे प्राचीन मूर्ति शुंग-काल की है, जिसमें वे हल तथा मूसल धारण किये दिखाये गये हैं। यह मूर्ति अब लखनऊ संग्रहालय में है (सं० जी० २१५)। बलराम की कुषाण तथा गुप्तकालीन अनेक मूर्तियां मिली हैं, जिन पर वे हल, मूसल, वारुणीपात्र आदि लिये हुए अंकित हैं (दृष्टव्य सं० सी० १५, ४३५ तथा सी० १६)।

स्वामिकार्तिक—शिव के पुत्र स्वामिकार्तिक की भी अनेक मूर्तियां मथुरा में मिली हैं। इनमें उल्लेखनीय २६४६ तथा ३४७ संख्यक हैं। पहली पर ब्राह्मी अभिलेख है, जिससे पता चलता है कि वह ८६ ई० में बनायी गयी थी। इसमें दायां हाथ अभयमुद्रा में है तथा बायें में लम्बा भाला है। दूसरी मूर्ति में कार्तिकेय अपने वाहन मयूर पर चढ़े हुए अंकित किये गये हैं। स्वामिकार्तिक की एक बहुत सुन्दर गुप्तकालीन मृण्मूर्ति (सं० २७९४) है। इसमें वे शक्ति धारण किये हुए, मयूर पर बैठे दिखाये गये हैं। उनके मुख-मण्डल से तेज टपक रहा है। ४६६ संख्यक मूर्ति में शिव तथा ब्रह्मा के द्वारा देवा-सेनापति कार्तिकेय का अभिषेक दिखाया गया है।

गणेश—शिव के दूसरे पुत्र गणेश के कई रूप मथुरा-कला में मिलते हैं। बाल गणपति तथा नृत्य करते हुए एकदंत गणेश की कई गुप्त प्रतिमाएं मिली हैं। उनकी मध्यकालीन मूर्तियों में एक दशभुजी मूर्ति (सं० २५२) उल्लेखनीय है। इसमें आकर्षक मुद्रा में बाल गणेश मोदक लिये हुए नृत्य कर रहे हैं।

इन्द्र—मथुरा-कला में कुषाण तथा गुप्तकालीन इन्द्र-मूर्तियां कई मिली हैं। मथुरा संग्रहालय की ३६२ संख्यक इन्द्र-मूर्ति कला की अद्भुत कृति है। यह कुषाण काल के प्रारम्भ की है। इसमें हाथ में वज्र धारण किये इन्द्र खड़े हैं। उनके दोनों कन्धों से नाग-मूर्तियां निकल रही हैं। इन्द्र के शिर पर ऊंचा किरीट मुकुट है। अभय मुद्रा में खड़े हुए इन्द्र की एक दूसरी मूर्ति भी उल्लेखनीय है। इसमें उनका वाहन ऐरावत हाथी भी है। इन्द्रशैल गुफा में तपस्या करते हुए बुद्ध के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए ऐरावत सहित आये हुए इन्द्र की कई मूर्तियां मिली हैं।

अग्नि—भारतीय कला में अग्नि की प्राचीन मूर्तियां बहुत कम प्राप्त होती हैं। मथुरा में अग्नि की जो प्रतिमाएं मिली हैं उनमें मूर्ति सं० २८८० कुषाणकालीन है। दूसरी (डी० २४) पूर्व मध्य काल की है। दोनों में अग्नि देव के सिर के ऊपर से ज्वालाएं निकल रही हैं। दूसरी मूर्ति में उनका वाहन मेष (मेंढ़ा) भी बना है। कंकाली टीला से अग्नि की एक गुप्तकालीन मूर्ति मिली थी, जो अब लखनऊ संग्रहालय में है (सं० जे० १२३)।

नवग्रह—नवग्रहों की प्रतिमाएं अनेक शिलापट्टों पर मिली हैं। राहु की एक अलग मूर्ति (सं० २८३६) भी मिली है, जिसमें वे तर्पण करते हुए दिखाये गये हैं।

सूर्य—नवग्रहों में सूर्य का स्थान सबसे अधिक महत्व का माना जाता है। मथुरा कला में इनकी मुख्य दो प्रकार की मूर्तियां मिली हैं। पहली भांति वाली प्रतिमाओं में वे शक राजाओं की वेशभूषा (उदीच्यवेश) में अंकित मिलते हैं। सं० २६९ ऐसी ही मूर्ति है। सूर्य के दायें हाथ में कटार तथा बायें में कमल का गुच्छा है। ये दो घोड़ों के रथ पर बैठे हैं। बाद में क्रमशः घोड़ों की संख्या चार तथा फिर सात हो जाती है। ऐसी अनेक मूर्तियां मथुरा से मिली हैं। सूर्य की एक मूर्ति सेलखड़ी पत्थर की भी बनी मिली है (सं० १२५६)। इस पर वे सासानी राजाओं के पहनावे में दिखाये गये हैं। दूसरी भांति की मूर्तियों में बैठे हुए या खड़े सूर्य को अन्य देवों की भांति दिखाया जाता है। इनमें वे दोनों हाथों में कमल ग्रहण किये रहते हैं।

कामदेव—कामदेव की अनेक कलापूर्ण पाषाण एवं मृण्मूर्तियां मथुरा से मिली हैं। २५५२ संख्यक मिट्टी की मूर्ति में धनुष तथा पंचबाण धारण किये हुए कामदेव का आकर्षक रूप मिलता है। इसमें शूर्पक मछुए तथा राजकुमारी कुमुद्वती की प्रेम-कथा का चित्रण है। बुद्ध द्वारा मार-विजय वाले दृश्यों में भी कामदेव की मूर्ति मिलती है।

हनुमान--हनुमान की ६'-७" ऊंची मूर्ति (डी०२७) मथुरा संग्रहालय में है जो लगभग ६वीं शताब्दी की है। मथुरा से प्राप्त हनुमान की एक दूसरी विशाल मूर्ति इंडियन म्यूजियम, कलकत्ता में है।

देवियों की मूर्तियां—देवों के साथ ही या अलग उनकी शक्तिरूपा देवियों की प्रतिमाओं का भी निर्माण मथुरा की मूर्तिकला में पाया जाता है। लक्ष्मी (सं० २५२०), सरस्वती (सं० डी० ५७), पार्वती (सं० १०४४), महिषमर्दिनी (सं० ५४१), सिंह वाहिनी दुर्गा (सं० १७८३), सप्तमातृका (सं० २८७२, एफ० ३८ एवं एफ० ४१) तथा गंगा-यमुना (सं० १५०७, २६५९) की अनेक कलापूर्ण मूर्तियां मिली हैं। इनके अतिरिक्त मातृदवी की मौर्य तथा शुङ्गकालीन मृण्मूर्तियां मिली हैं (सं० १५९२, २२२२, २२४१, २२४३ आदि)। ये मूर्तियां प्रायः हाथ की बनी हुई हैं, सांचे द्वारा निर्मित नहीं। लक्ष्मी, सिंहवाहिनी, महिषमर्दिनी, वसुधारा आदि देवियों की मिट्टी की मूर्तियां भी मिली हैं।

जैन मूर्तियां

मथुरा में जैन मूर्तियों का निर्माण कुषाण काल के पहले से होने लगा था। इस नगर के पश्चिम में कंकाली टीला नामक स्थान जैन धर्म का बहुत बड़ा केन्द्र था। मथुरा-कला में जैन-मूर्तियों को तीन मुख्य भागों में बांटा जा सकता है। १--तीर्थंकर प्रतिमाएं, २--देवियों की मूर्तियां तथा ३--आयागपट्ट आदि कृतियां।

१—तीर्थंकर मूर्तियां—जैन देवता तीर्थंकर या 'जिन' कहलाते हैं। तीर्थंकर संख्या में चौबीस हैं। मथुरा-कला में आदिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर आदि तीर्थंकरों की मूर्तियां मिली हैं, जो प्रायः पद्मासन में बैठी हैं। कुछ खड़ी हुई (खड्गासन में) भी मिली हैं। ऐसी भी कई प्रतिमाएं मिली हैं जिनमें चारों दिशाओं में से प्रत्येक ओर एक-एक तीर्थंकर मूर्ति बनी है। ऐसी प्रतिमाओं को 'सर्वतोभद्रिका' कहते हैं। मथुरा संग्रहालय में बी० १, ६७, बी० ६८ तथा बी० ४ संख्यक सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएं विशेष उल्लेखनीय हैं।

२—देवियों की मूर्तियां—जैन देवियों की भी मूर्तियां मिली हैं, जो अधिकतर गुप्त काल तथा मध्य काल की हैं। इनमें नेमिनाथ की यक्षिणी अंबिका (डी० ७) तथा ऋषभनाथ की यक्षिणी चक्रेश्वरी (डी० ६) की मूर्तियां दर्शनीय हैं।

३—अन्य कलाकृतियां—मथुरा में कई कलापूर्ण आयागपट्ट मिले हैं। आयागपट्ट प्रायः वर्गाकार शिलापट्ट होते थे, जो पूजा में प्रयुक्त होते थे। उनके ऊपर तीर्थंकर, स्तूप, स्वस्तिक, नंद्यावर्त आदि पूजनीय चिह्न उत्कीर्ण किये जाते थे। मथुरा संग्रहालय में एक सुन्दर आयागपट्ट (सं० क्यू० २) है, जिसे, उस पर लिखे हुए लेख के अनुसार, लवणशोभिका नामक वेश्या की लड़की वसु ने दान में दिया था। इस आयागपट्ट पर एक विशाल स्तूप का चित्र तथा वेदिकाओं सहित तोरण-द्वार बना हुआ है। लखनऊ संग्रहालय में मथुरा-आयागपट्टों के कई सुन्दर उदाहरण (सं० जे० २४८, २४९ आदि) प्रदर्शित हैं। आयागपट्टों के अतिरिक्त अन्य विविध शिलापट्ट तथा वेदिकास्तंभ भी मिले हैं, जिन पर जैन धर्म सम्बन्धी मूर्तियां तथा चिह्न अंकित हैं। इन कलाकृतियों पर देवता, यक्ष-यक्षी, पुष्पित लता-वृक्ष, मीन, मकर, गज, सिंह, वृषभ, मंगलघट, कीर्तिमुख आदि बड़े कलात्मक ढंग से उत्कीर्ण मिलते हैं।

बौद्ध मूर्तियां

यद्यपि भगवान् बुद्ध का पूजन कुषाण काल के कई शताब्दी पहले आरम्भ हो चुका था पर वह उनके चिह्नों की पूजा तक ही सीमित था; बुद्ध की मूर्ति का निर्माण नहीं हुआ था। शुंगकाल के अन्त

तक हम यही स्थिति पाते हैं। सांची, भरहुत, बोधगया, सारनाथ आदि स्थानों से उस समय तक की जितनी बौद्ध कलाकृतियां प्राप्त हुई हैं उन पर बोधिवृक्ष, धर्मचक्र, स्तूप, भिक्षापात्र आदि का ही पूजन दिखाया गया है, मूर्तरूप में भगवान् बुद्ध का पूजन कहीं नहीं। मथुरा से भी जो प्राचीन मूर्तियां मिली हैं उन पर इन चिह्नों का पूजन मिलता है। मथुरा में हिन्दुओं के बलराम आदि देवों तथा जैन तीर्थंकर-प्रतिमाओं का निर्माण प्रारम्भ हो चुका था। बौद्ध धर्मानुयायियों में भी अपने देव को प्रतिमा के रूप में देखने की उमंग का उठना स्वाभाविक था। मथुरा के कुषाण शासक मूर्ति-निर्माण के प्रेमी थे और उस समय यहां भक्तिप्रधान महायान धर्म प्रबल हो उठा था। फलस्वरूप कुषाण-काल में मथुरा के शिल्पियों द्वारा भगवान् बुद्ध की मूर्ति का निर्माण हुआ। इधर गांधार प्रदेश में भी बौद्ध मूर्तियां बड़ी संख्या में बनायी जाने लगीं। मथुरा से प्राप्त बुद्ध और बोधिसत्व की प्रारम्भिक प्रतिमाएं प्रायः विशालकाय मिली हैं, जैसी कि यक्ष-मूर्तियां मिलती हैं। कला के विकास के साथ ही मूर्तियां अधिक सुन्दर बनने लगती हैं। मथुरा में गुप्त काल में निर्मित बुद्ध की कुछ प्रतिमाओं में बाह्य सौन्दर्य के साथ आध्यात्मिक गांभीर्य का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है।

बुद्ध तथा बोधिसत्व प्रतिमाएं—ज्ञान या संबोधि प्राप्त होने के पहले बुद्ध की संज्ञा 'बोधिसत्व' थी और उसके बाद 'बुद्ध'। इन दोनों की मूर्तियों में अन्तर यह है कि 'बोधिसत्व' को मुकुट आदि विविध आभूषणों से अलंकृत राजवेश में दिखाया जाता है, पर बुद्ध को इनसे रहित केवल वस्त्र (चीवर) धारण किये हुए। बुद्ध के सिर पर बालों का जटाजूट (उष्णीष) रहता है, जो उनके बुद्धत्व या ज्ञानसंपन्न होने का सूचक है। दोनों प्रकार की मूर्तियां मथुरा में या तो खड़ी मिलती हैं या पद्मासन में बैठी हुई। द्वितीय प्रकार की मूर्तियां प्रायः कुषाण काल में मिलती हैं। गुप्तकालीन मूर्तियां अधिकांश खड़ी मिलती हैं। मथुरा संग्रहालय में उत्कृष्ट बुद्ध प्रतिमाएं सं० ए० १, ए० २, ए० ५, ए० ४० तथा २७९८ हैं।

मुद्राएं—बोधिसत्व तथा बुद्ध-प्रतिमाएं हाथों के द्वारा अनेक भावों को व्यक्त करती पायी जाती हैं। उन भाव-विशेषों को 'मुद्रा' कहते हैं। मथुरा-कला में निम्नलिखित चार मुद्राएं मिलती हैं—

(१) ध्यान मुद्रा—इसमें बोधिसत्व या बुद्ध पद्मासन में बैठे हुए तथा बाएं हाथ के ऊपर दायां रखे हुए दिखाये जाते हैं।

(२) अभय मुद्रा—इसमें वे दाएं हाथ को उठा कर उसे कंधे की ओर मोड़ कर श्रोताओं या दर्शकों को अभय-प्रदान करते हुए दिखाये जाते हैं।

(३) भूमिस्पर्श मुद्रा—इसमें ध्यानावस्थित बुद्ध दाएं हाथ से भूमि को छूते हुए प्रदर्शित किये जाते हैं। जब बोधगया में उनके तप को नष्ट करने का प्रयत्न कामदेव द्वारा किया गया तब उन्होंने इस बात की साक्षी देने के लिए कि उनके मन में कोई भी काम-विकार नहीं, पृथिवी का स्पर्श कर उसका आह्वान किया था, जिसे उक्त मुद्रा द्वारा व्यक्त किया जाता है।

(४) धर्म-चक्र-प्रवर्तन-मुद्रा—इसमें भगवान् बाएं हाथ की उंगलियों के ऊपर दाएं हाथ की उंगलियों को इस प्रकार रखते हैं मानों वे चक्र घुमा रहे हों। यह दृश्य सारनाथ में उनके द्वारा धर्म के सर्वप्रथम उपदेश को सूचित करता है। यहीं से उन्होंने संसार में एक नये धर्म का प्रवर्तन किया।

इनके अतिरिक्त एक 'वरद मुद्रा' भी है, जो मथुरा में नहीं मिलती। इसमें भगवान् का दायां हाथ हथेली को इस प्रकार सामने किये नीचे लटकता है, मानों वे वरदान दे रहे हों।

जातक कथाएं तथा बुद्ध के जीवन की घटनाएं---बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्तियों के अतिरिक्त मथुरा कला में उनके पूर्व जन्मों की घटनाएं भी अनेक शिलापट्टों पर चित्रित मिलती है, जिन्हें 'जातक' कहते हैं। बौद्ध धर्म के अनुसार बुद्ध होने के पहले भगवान् कई योनियों में विचरे थे। उन्हीं पूर्वजन्मों की कहानियां जातक-कथाएं हैं। मथुरा में इस प्रकार के दृश्यों वाले कई पट्ट हैं (सं० आई० ४ आदि)। गौतम बुद्ध के वर्तमान जीवन की मुख्य घटनाएं---जन्म, ज्ञान-प्राप्ति, धर्म--चक्र-प्रवर्तन, स्वर्गावतरण, परिनिर्वाण आदि भी मथुरा-कला में अंकित मिलती हैं (सं० एच० १, एच० ११ आदि)।

वेदिका-स्तम्भों पर उत्कीर्ण प्रतिमाएं

स्तूपों का वर्णन करते समय वेदिकास्तम्भों का उल्लेख किया जा चुका है। इन स्तम्भों पर विविध मनोरंजक चित्रण मिलते हैं—मुक्ताग्रथित केश-पाश, कर्णकुण्डल, मौक्तिक एकावली, गुच्छक हार, केयूर, कटक, मेखला, नूपुर आदि धारण किये हुए स्त्रियों को विविध आकर्षक मुद्राओं में दिखाया गया है। कहीं कोई युवती उद्यान में फूल चुन रही है, कोई कंदुक क्रीड़ा में लग्न है (जे० ६१), कोई अशोक वृक्ष को पैर से ताड़ित कर उसे पुष्पित कर रही है (सं० २३२५), या निर्झर में स्नान कर रही है अथवा स्नानोपरान्त तन ढक रही है (जे० ४)। किसी के हाथ में वीणा (जे० ६२) और किसी के वंशी है तो कोई प्रमदा नृत्य में तल्लीन है। कोई सुन्दरी स्नानागार से निकलती हुई अपने बाल निचोड़ रही है और नीचे हंस उन पानी की बूंदों को मोती समझकर अपनी चोंच खोले खड़ा है (१५०६)। किसी स्तम्भ (जे० ५) पर वेणी-प्रसाधन का दृश्य है, किसी पर संगीतोत्सव का और किसी पर मधुपान का (१५१)। इस प्रकार लोक जीवन के कितने ही दृश्य इन स्तम्भों पर चित्रित हैं। कुछ पर भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मों से सम्बन्धित विभिन्न जातक कहानियां (सं० जे० ४ का पृष्ठ भाग) और कुछ पर महाभारत आदि के दृश्य (नं० १५१) भी हैं। इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार के पशुपक्षी, लता-फूल आदि भी इन स्तम्भों पर उत्कीर्ण किये गये हैं। इन वेदिका-स्तंभों को शृंगार और सौन्दर्य के जीते-जागते रूप कहने चाहिए, जिन पर कलाकारों ने प्रकृति तथा मानव जगत् की सौन्दर्य राशि उपस्थित कर दी है।

यक्ष, किन्नर, गंधर्व आदि

मथुरा-कला में यक्ष, किन्नर, गंधर्व, सुपर्ण तथा अप्सराओं की अनेक मूर्तियां मिलती हैं। ये सुख-समृद्धि तथा विलास के प्रतिनिधि हैं। संगीत, नृत्य और सुरापान इनके प्रिय विषय हैं। यक्षों की प्रतिमाएं मथुरा कला में सब से अधिक मिली हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण परखम नामक गांव से प्राप्त तृतीय श० ई० पू० की विशालकाय यक्ष मूर्ति (सी० १) है। ऐसी एक दूसरी बड़ी मूर्ति मथुरा के बड़ोदा गांव से प्राप्त हुई है। ये मूर्तियां कोरकर बनाई गई हैं, जिससे उनका दर्शन चारों ओर से हो सके। कुषाण काल में ऐसी ही मूर्तियों के समान विशालकाय बोधिसत्व प्रतिमाएं निर्मित की गयीं।

यक्षों में कुबेर तथा उनकी स्त्री हारीती का स्थान बड़े महत्व का है। इनकी अनेक मूर्तियां मथुरा में प्राप्त हुई हैं। कुबेर यक्षों के अधिपति तथा धन के देवता माने गये हैं। बौद्ध, जैन तथा हिन्दू---इन तीनों धर्मों में इनका पूजन मिलता है। कुबेर जीवन के आनन्दमय रूप के द्योतक हैं और इसी रूप में इनकी अधिकांश मूर्तियां मिली हैं। संग्रहालय में संख्या सी० २, सी० ५ तथा सी० ३१ कुबेर की उल्लेखनीय मूर्तियां हैं, जिनमें वे सुरापान करते हुए चित्रित किये गये हैं।

इनके हाथों में सुरापात्र, बिजौरा-नीबू तथा रत्नों की थैली या नेवला रहता है। कुछ वर्ष पूर्व कुबेर की एक सुन्दर अभिलिखित मूर्ति (सं० ३२३२), प्राप्त हुई है जो ई० तीसरी शती की है। कुबेर के साथ उनकी स्त्री हारीती की भी मूर्ति मिलती है। यह प्रसव की अधिष्ठात्री देवी मानी गयी है और मथुरा कला में उसका चित्रण प्रायः बच्चों को गोद में लिये हुए मिलता है।

मथुरा कला में यक्षियों का चित्रण बहुत मिलता है। इनके अतिरिक्त पूज्य प्रतिमाओं के साथ या विविध अलंकरणों के रूप में किन्नर, गंधर्व, सुपर्ण, विद्याधर आदि भी मिलते हैं।

नाग मूर्तियां

यक्षों आदि के समान प्राचीन मथुरा में नागों की पूजा मिलती है। इनका भी सम्बन्ध विविध धर्मों से पाया जाता है। भगवान् कृष्ण के भाई बलराम को शेषनाग का अवतार माना जाता है। विष्णु की शय्या भी अनन्त नागों की बनी हुई कही गयी है। जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ तथा सुपार्श्व के चिह्न नाग हैं। बौद्ध धर्म के अनुसार मुचुलिंद नामक नाग ने ही भगवान् बुद्ध के ऊपर छाया की थी तथा नन्द और उपनन्द नागों ने उन्हें स्नान कराया था। रामग्राम स्तूप की रक्षा भी नागों द्वारा की गयी थी (मथुरा शिलापट्ट सं० आई० ६)। इस प्रकार भारतीय धर्मों में नागों का पूज्य स्थान है। नागों की मूर्तियां पुरुषाकार तथा सर्पाकार–दोनों रूपों में मिलती हैं। शेषावतार रूप में बलराम की जो मूर्तियां मिलती हैं, उनके गले में वैजयन्ती माला आदि आभूषण तथा हाथों में मूसल और वारुणीपात्र दिखाये जाते हैं। मथुरा संग्रहालय में इस प्रकार की कुषाण तथा गुप्तकालीन कई सुन्दर मूर्तियां हैं (१३६६,३२१० सी० १६ तथा ४३५)। नाग की सबसे विशाल मूर्ति सं० सी० १३ है जो पौने आठ फुट ऊंची है। यह छड़गांव, जि० मथुरा से प्राप्त हुई थी। इसमें नाग की कुण्डलियां बड़े ओजपूर्ण तथा ऐंड़दार ढंग से दिखायी गयी हैं। इस मूर्ति की पीठ पर खुदे हुए लेख से ज्ञात होता है कि यह महाराजाधिराज हुविष्क के समय में चालीसवें वर्ष (सन् ११८ ई०) में सेनहस्ती तथा भोणुक नामक दो मित्रों के द्वारा बनवाकर प्रतिष्ठापित की गयी। भूमिनाग (सं० २११) तथा दधिकर्ण नाग (सं० १६१०) की भी मूर्तियां मथुरा संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। बलदेव में दाऊजी की प्रसिद्ध विशालकाय मूर्ति भी कुषाण काल की उल्लेखनीय कृतियों में है।

शक-कुषाण राजाओं की प्रतिमाएं

मथुरा से शक-कुषाण राजाओं तथा शासक वर्ग की कई अत्यन्त महत्वपूर्ण मूर्तियां मिली हैं, जो भारत में अन्यत्र नहीं मिलतीं। मथुरा से लगभग ८ मील दूर मांट नामक स्थान में कुषाण राजाओं का एक देवकुल था, जहां से इन राजाओं की मूर्तियां मिली हैं।

विम कैडफाइसिस की मूर्ति (सं० २१५)— इस विशालकाय मूर्ति में, जिसका सिर नहीं है, महाराज विम सिंहासनारूढ़ दिखाये गये हैं। वे लम्बा चोगा, गुलूबन्द, सलवारनुमा पायजामा तथा चमड़े के तसमों से कसे हुए मोटे जूते पहने हैं। मूर्ति पर राजा का नाम लिखा है।

कनिष्क की प्रतिमा (सं० २१३)—कनिष्क कुषाण वंश का सबसे प्रतापी सम्राट् था। इसकी वेशभूषा विम से बहुत मिलती-जुलती है। इसके दायें हाथ में राजदण्ड तथा बायें में तलवार है। मोटे जूते, जिन्हें गिलगिटी जूते कहते हैं, दर्शनीय हैं। इस मूर्ति पर भी राजा का नाम लिखा है।

चष्टन की मूर्ति (सं० २१२)—चष्टन पश्चिमी भारत के शक क्षत्रप-वंश का जन्मदाता था। इस मूर्ति की भी वेशभूषा उपर्युक्त मूर्तियों के समान है। इसका चोगा जरीदार है तथा कमरबन्द भी अलंकृत है।

इन मूर्तियों के अतिरिक्त उपर्युक्त वेशभूषा धारण किये हुए अनेक शक राजकुमारों तथा सरदारों की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं।

गांधार कला में शक महिषी की मूर्ति (सं० एफ ४२)---यह मूर्ति यमुना-किनारे स्थित सप्तर्षि टीले से प्राप्त हुई है और नीले सिलेटी पत्थर की बनी है। यद्यपि यह 'गांधार कला की कृति है, जो मथुरा-कला से भिन्न है, तथापि मथुरा में इसका पाया जाना बड़े महत्व की बात है। उसी स्थान से प्राप्त खरोष्ठी के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि मथुरा के महाक्षत्रप राजुल की महारानी कमुइग्र (कम्बोजिका) ने यहां बौद्ध स्तूप तथा विहार बनवाये। सम्भवतः यह मूर्ति उसी महारानी की है।

मिट्टी की मूर्तियां

मथुरा-कला में विविध धर्मों के देवों की अनेक प्रकार की मूर्तियों के मिलने के साथ ऐसी कृतियां भी मिली हैं जिनका सम्बन्ध मुख्यतया लोकजीवन से है। ऐसी मूर्तियों में मृण्मूर्तियों का स्थान बड़े महत्व का है। यद्यपि मिट्टी की कुछ मूर्तियां देवी-देवताओं--विशेषतः हिन्दू धर्म के दवताओं--की भी मिली हैं, पर उनकी संख्या थोड़ी है। अधिकांश मिट्टी की मूर्तियां नागरिक तथा ग्रामीण लोक-जीवन पर प्रकाश डालती हैं। मथुरा संग्रहालय में इनकी संख्या बहुत अधिक है। ये अधिकतर टीलों में से तथा यमुना नदी से प्राप्त हुई हैं। इनके मुख्य दो प्रकार हैं-- एक तो वे जो मौर्यकाल में या उसके पूर्व मातृ देवियों आदि की मूर्तियों के रूप में हाथ से गढ़ कर बनायी जाती थीं और दूसरी सांचों द्वारा निर्मित। दूसरे प्रकार की मूर्तियां शुंगकाल से लेकर लगभग पूर्व मध्यकाल तक पायी जाती हैं। ई० पू० २०० से लेकर ६०० ई० तक की मृण्मूर्तियों की संख्या सबसे अधिक है। इनमें से कुछ तो लड़कों के खेलने के लिए बनती थीं---जैसे हाथी, घोड़े, गाड़ी, आदि खिलौने। शेष मूर्तियां वे हैं जिनमें जीवन के विविध अंगों का वैसा ही प्रदर्शन है जैसा कि हम पाषाण पर पाते हैं। मथुरा संग्रहालय की कुछ उल्लेखनीय मिट्टी की मूर्तियां ये हैं---सं० २५६५, जिस पर राजसी ठाट में एक स्त्री पंखा लिये खड़ी है। सं० २८५३, जिस पर कोई राजकुमार रथ पर बैठकर बाहर जा रहा है। सं० २६२१, जिस पर स्त्री-पुरुष का जोड़ा चित्रित है। सं० २३५०, जिस पर किन्नर-किन्नरी हवा में उड़ान ले रहे हैं। सं० १६२१, जिस पर सुन्दर साड़ी पहने तथा बच्चे को अंक में लिये एक स्त्री बैठी है। सं० २५६२, जिस पर शुक-क्रीड़ा का चित्रण है तथा सं० २४२६ जो सुन्दर बालों से सज्जित पुरुष-सिर है।

उपर्युक्त मृण्मूर्तियों के अतिरिक्त मथुरा से नागरिकों, सेठों, धर्मवीरों तथा विदेशी लोगों के अनेक प्रकार के सिर मिले हैं। मथुरा के स्थानीय संग्रहालय में सं० २८२७, १५७, १५६६, २५६४, जी० ३४ तथा २१२२ संख्यक पाषाण-सिर कला की दृष्टि से बड़े महत्व के हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मथुरा की विशाल कला-राशि में भारतीय इतिहास और संस्कृति के अध्ययन की कितनी मूल्यवान सामग्री उपलब्ध है।

———

पश्चिमी उत्तर प्रदेश का प्राचीन मान चित्र

अभिलिखित यक्ष मूर्ति; परखम से प्राप्त; समय ई० पू० तीसरी शती
(मथुरा संग्रहालय)
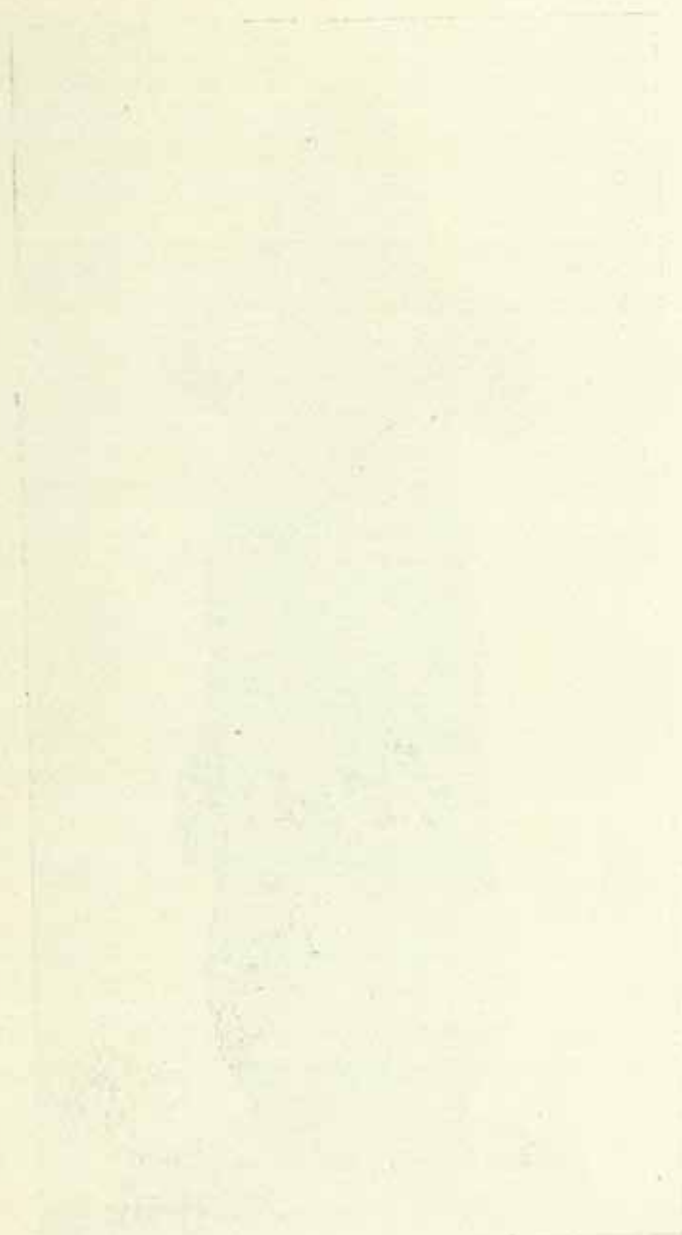
क—सुसज्जित केश विन्यास युक्त स्त्री-सिर; शुंगकालीन मिट्टी की मूर्ति (मथुरा संग्रहालय)

ख—मातृदेवी की ऊर्ध्वकाय मृण्मूर्ति; मथुरा से प्राप्त; मौर्य काल (मथुरा संग्रहालय)

फलक—४

क—दाएं हाथ में मत्स्य-युग्म लिये देवी वसुधारा की मृण्मूर्ति का निचला भाग; शुंगकाल (मथुरा संग्रहालय)

ख—आकर्षक वश-भूषा सहित स्त्री मूर्ति का धड़; मिट्टी की उत्तर शुंगकालीन मूर्ति (मथुरा संग्रहालय)
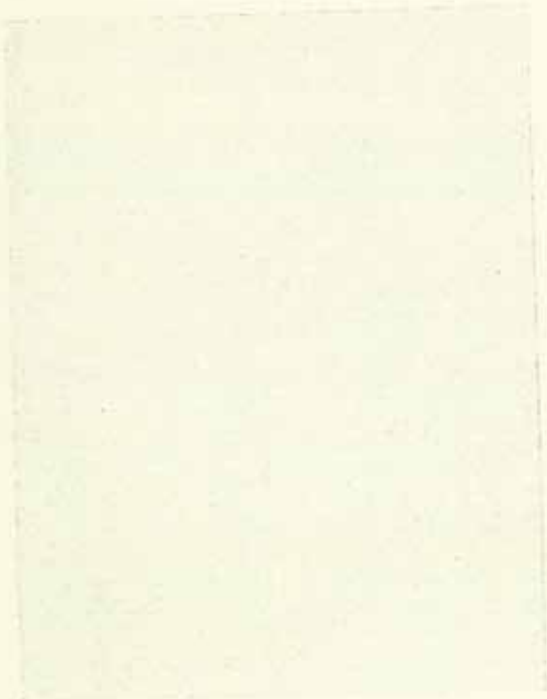
ख—पुष्प ग्रथित केश-संभार युक्त स्त्री की मृण्मूर्ति; उत्तर शुंगकाल (मथुरा संग्रहालय)

क—प्रसाधन का दृश्य। मोढ़े पर बैठी हुई स्त्री दर्पण में मुख देख कर केश-प्रसाधन कर रही हैं। शुंगकालीन मिट्टी की प्रतिमा (मथुरा संग्रहालय)

लक्ष्मी-अभिषेक; मिट्टी की शुंगकालीन मूर्ति
(मथुरा संग्रहालय)
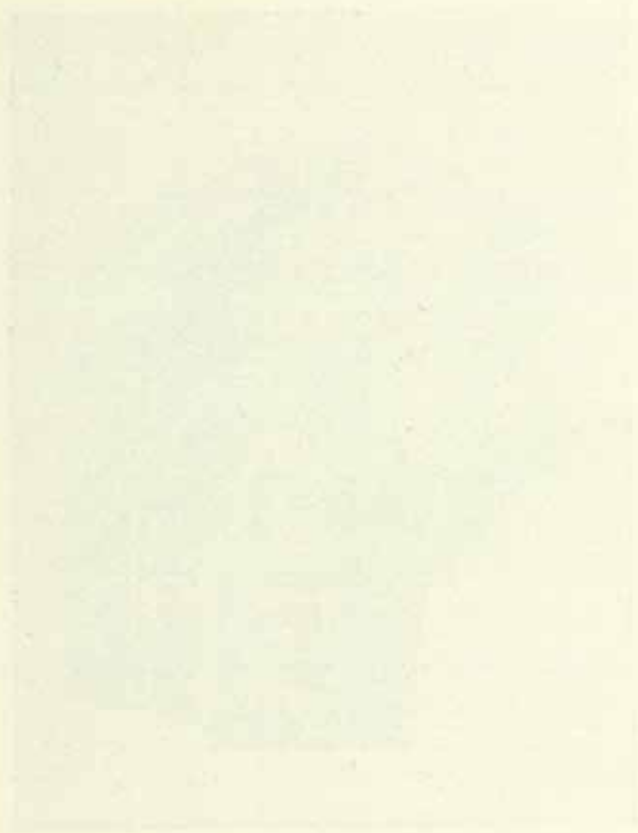
आकर्षक मुद्रा में खड़ी हुई तोरण शालभंजिका-मूर्ति; शुंगकाल
(राजकीय संग्रहालय, लखनऊ)
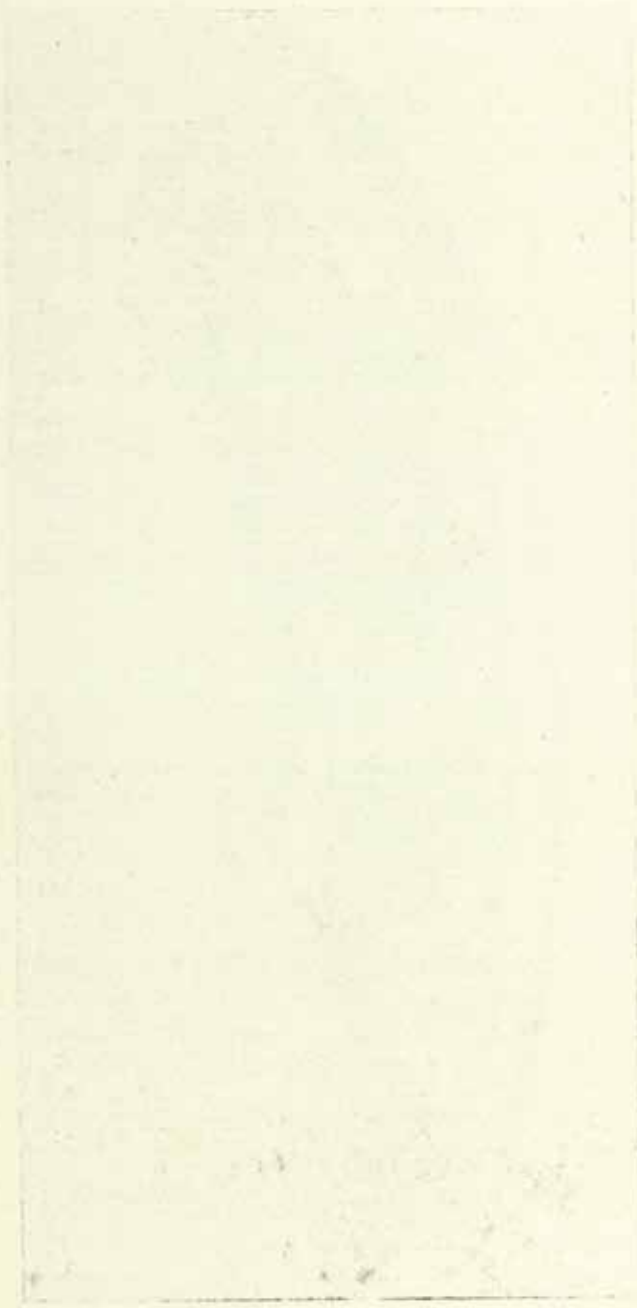
क—संगीत गोष्ठी का दृश्य; शुंगकाल
(राजकीय संग्रहालय, लखनऊ)

ख—अनोतत्त्व झील , जिसमें स्नान करते हुये नाग-नागी दिखाये गए हैं; शुंगकाल
(मथुरा संग्रहालय)
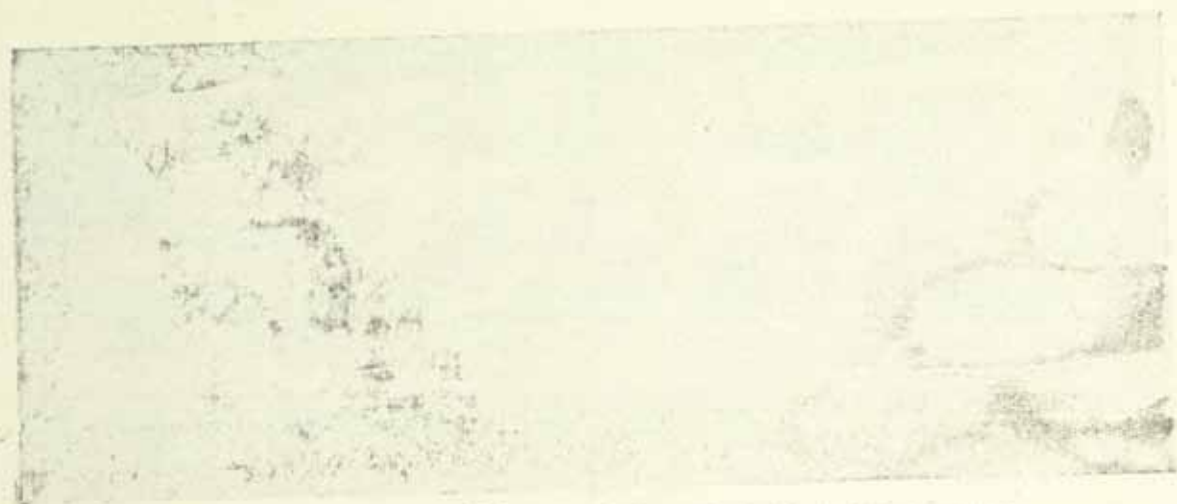
क—अभिलिखित तोरण का टुकड़ा जिसपर आगे धनुष लिये हुए मंदगति से बढ़ता हुआ अहेरी पुरुष तथा पीछे तूणीर लिये रमणी प्रदर्शित है। अभिलिखित सिरदल के टुकड़े पर उत्कीर्ण
(मथुरा संग्रहालय)

ख—बलराम की प्रतिमा का ऊपरी भाग; ईसवी द्वितीय शती
(मथुरा संग्रहालय)
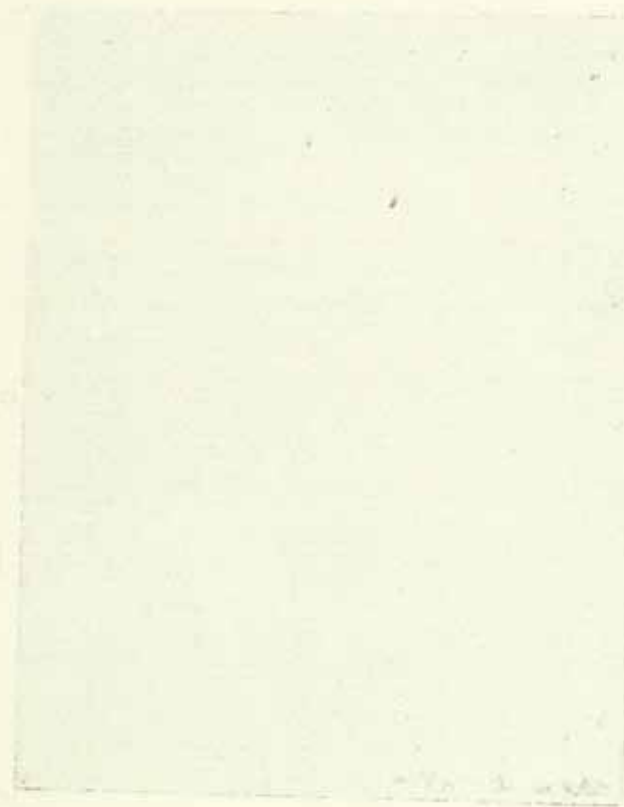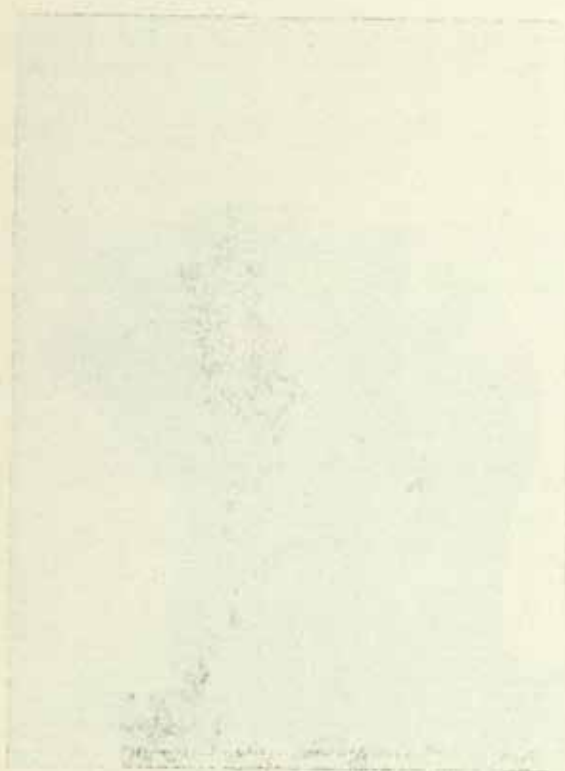
क—शकराज चष्टन की प्रतिमा का रेखाचित्र
(मथुरा संग्रहालय)

कुषाणराजा की प्रतिमा, जो मथुरा में गोकर्णेश्वर नाम से प्रसिद्ध है।
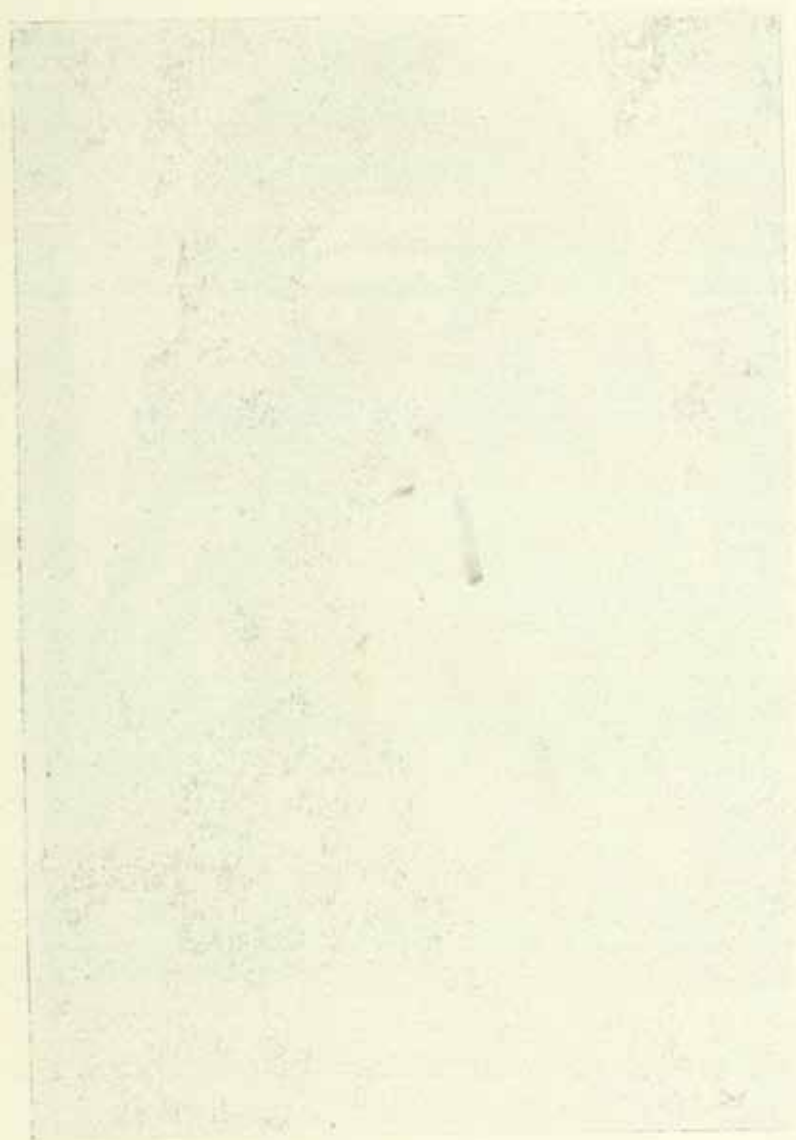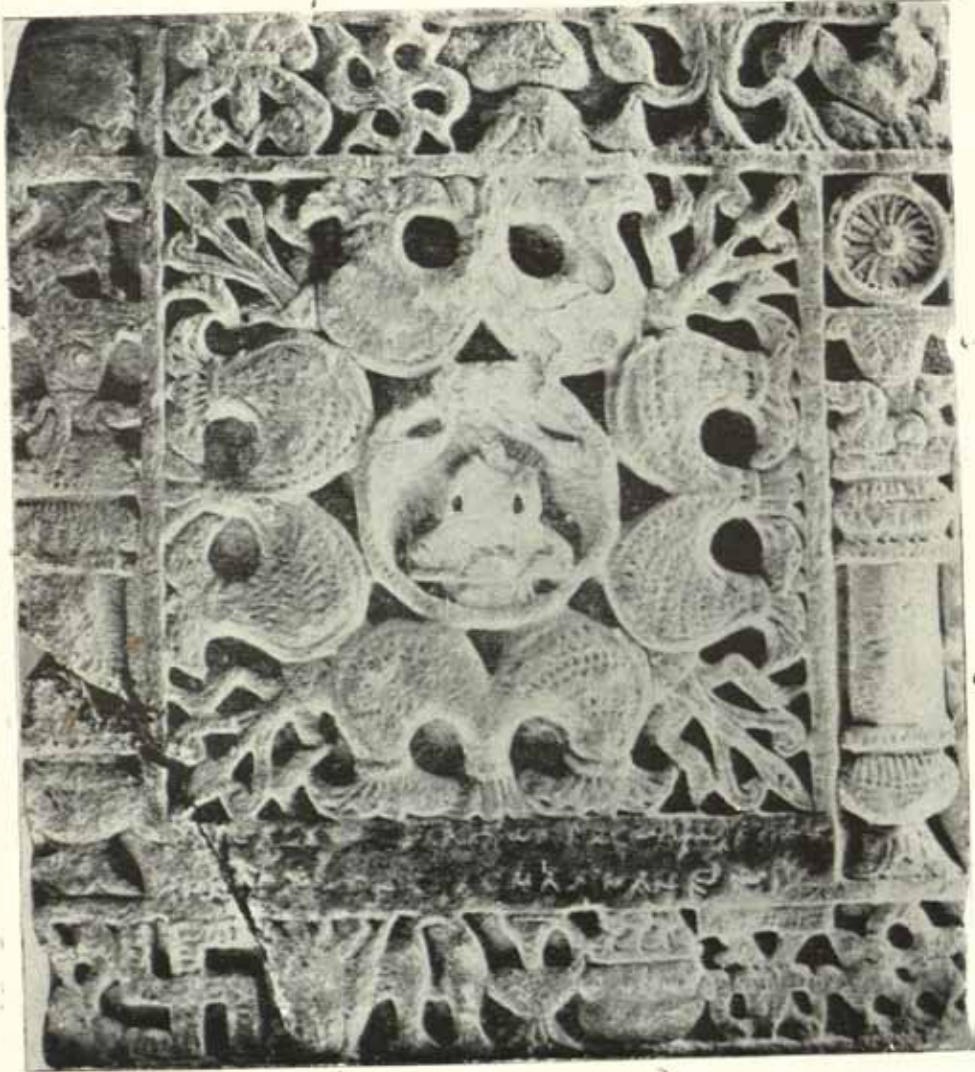
जैन आयागपट्ट; बीच में ध्यानस्थ तीर्थंकर हैं तथा उनके चारों ओर नंद्यावर्त आदि विविध चिह्न और अलंकरण हैं; समय ई० पूर्व प्रथम शती
(लखनऊ संग्रहालय)
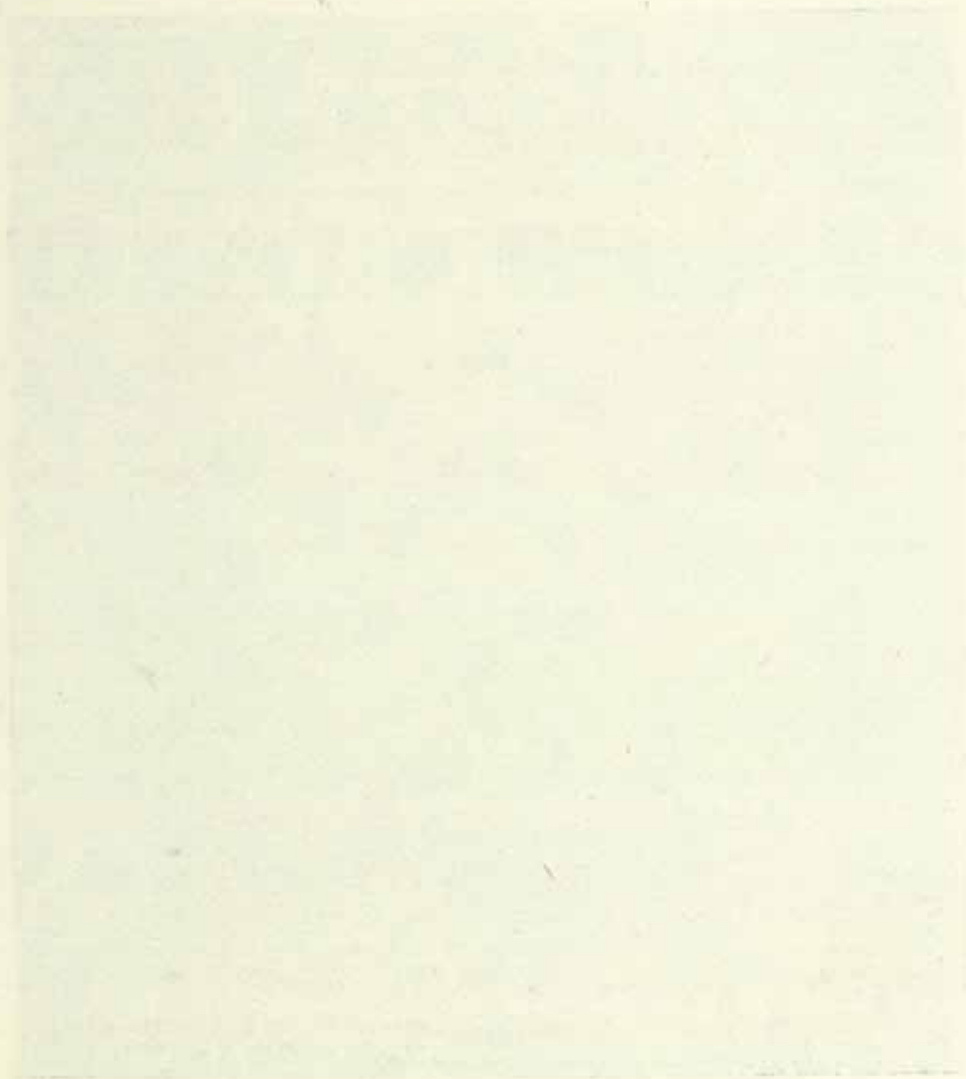
बुद्ध का महापरि-निर्वाण; मथुरा के वराह मंदिर में लगा हुआ शिलापट्ट, प्रारंभिक कुषाण काल
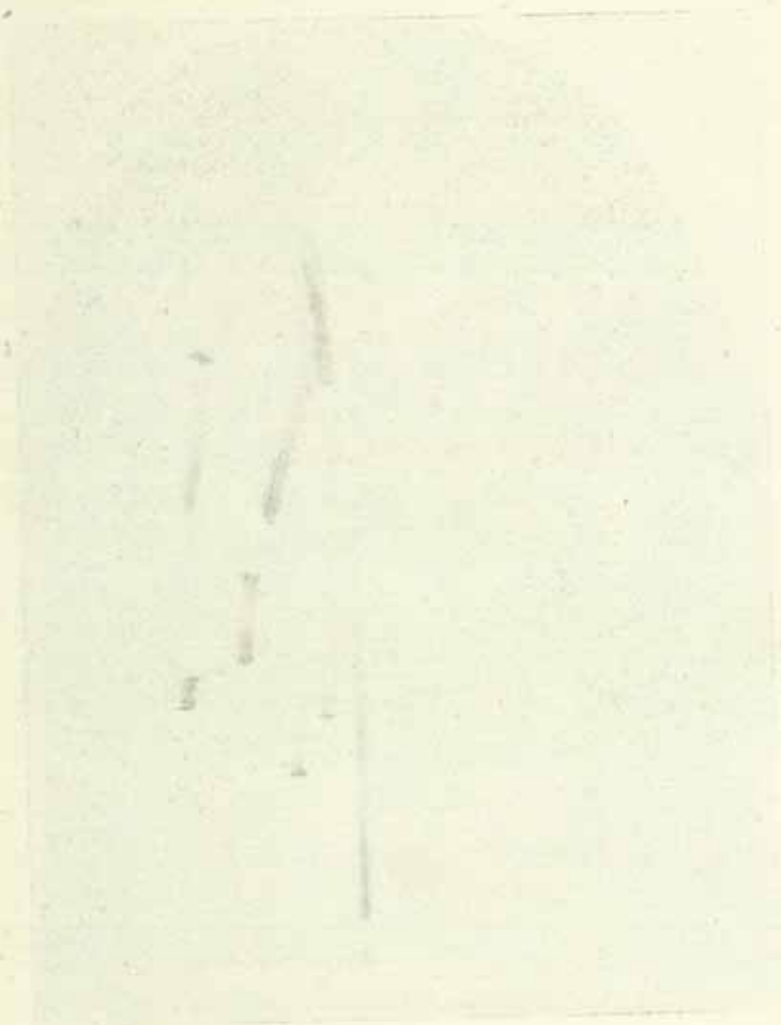
मद्य-पान का एक दृश्य ; महोली से प्राप्त ; ई० पू० दूसरी शती
(राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली)
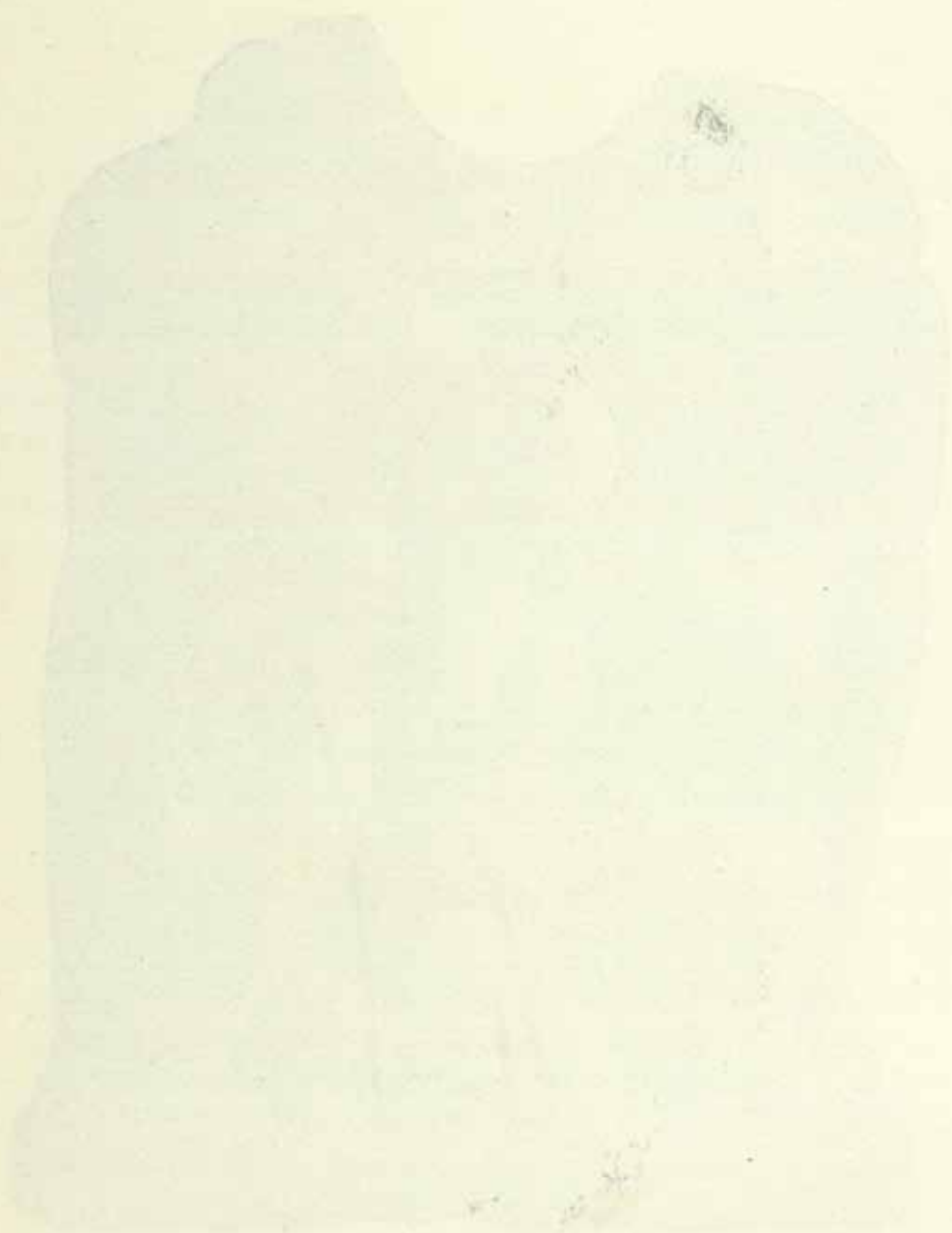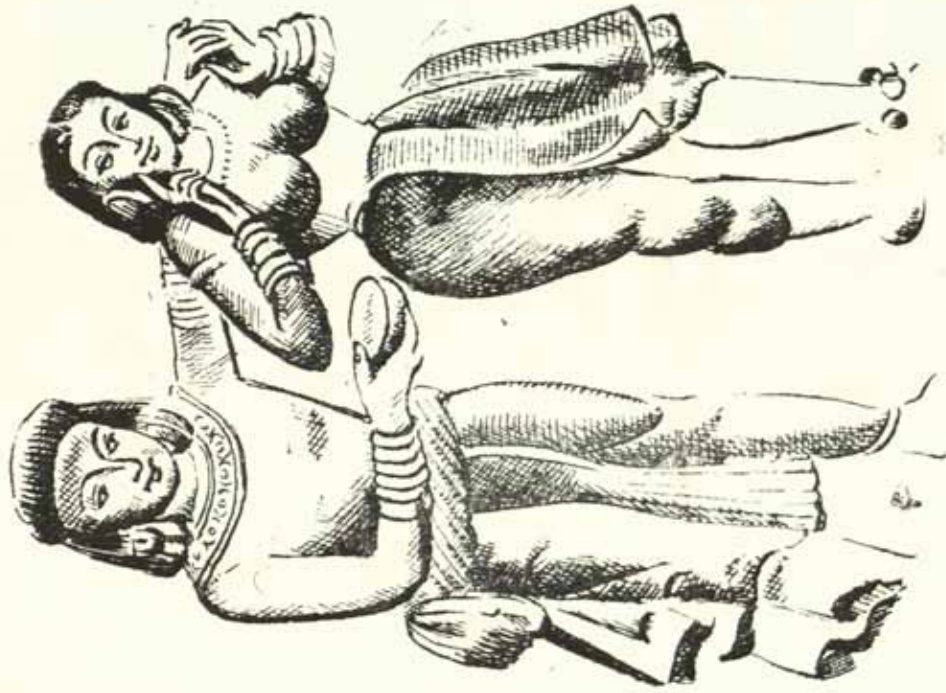
क—मानिनी का अनुनय करता हुआ हाथ में मधुपात्र लिये पुरुष। मथुरा के कुषाणकालीन वेदिका स्तंभ पर उत्कीर्ण दृश्य का रेखाचित्र (मथुरा संग्रहालय)
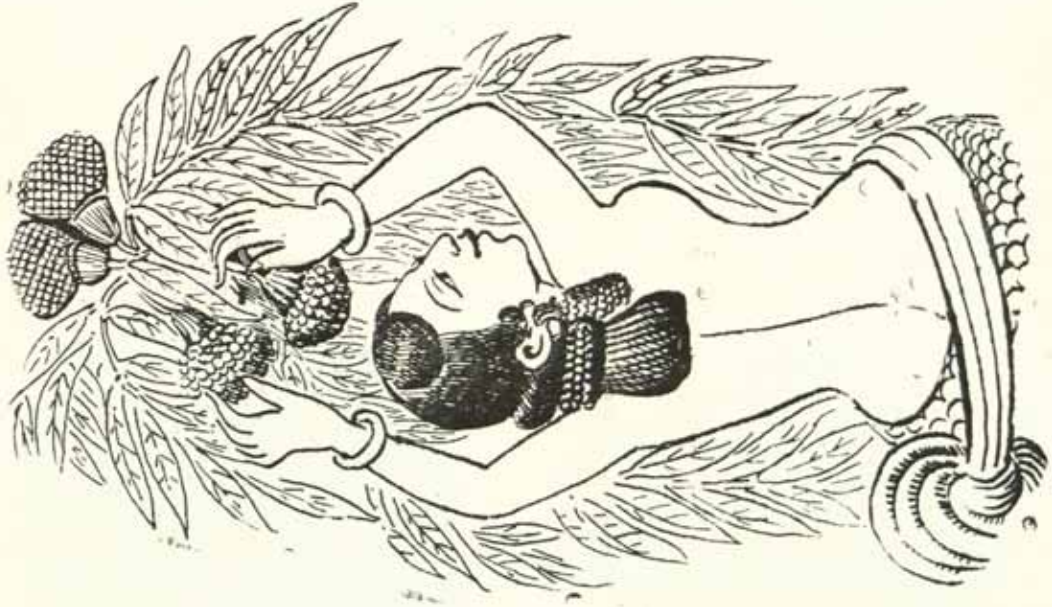
ख—अशोक वृक्ष स पुष्प तोड़ती हुई सुन्दरी; मथुरा के वेदिका स्तंभ पर उत्कीर्ण मूर्ति; कुषाणकाल
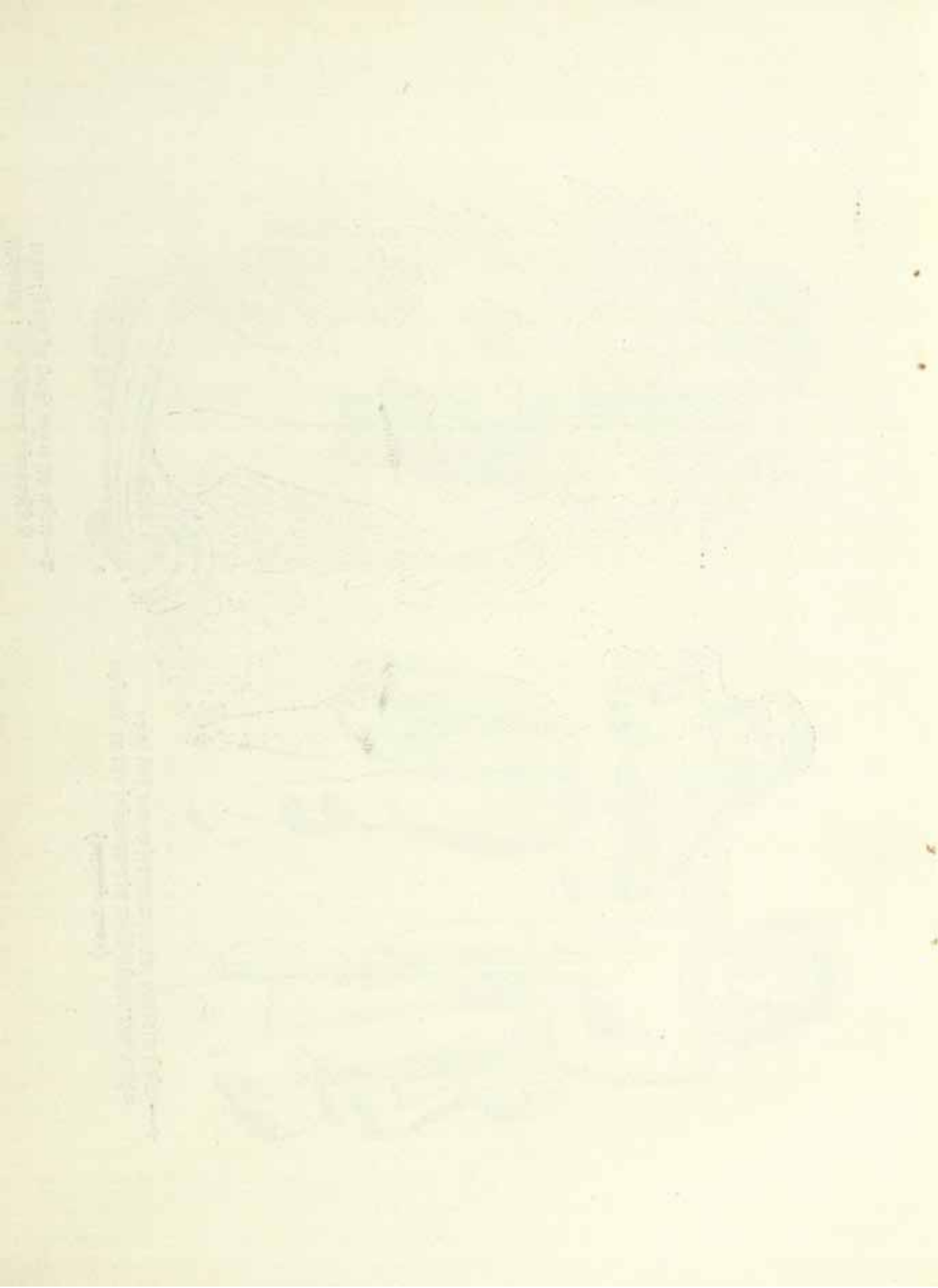
क--सुरापान करते हुए कुबेर; कुषाणकाल
(मथुरा संग्रहालय)

ख--नागी-मूर्ति; कुषाण काल
(मथुरा संग्रहालय)
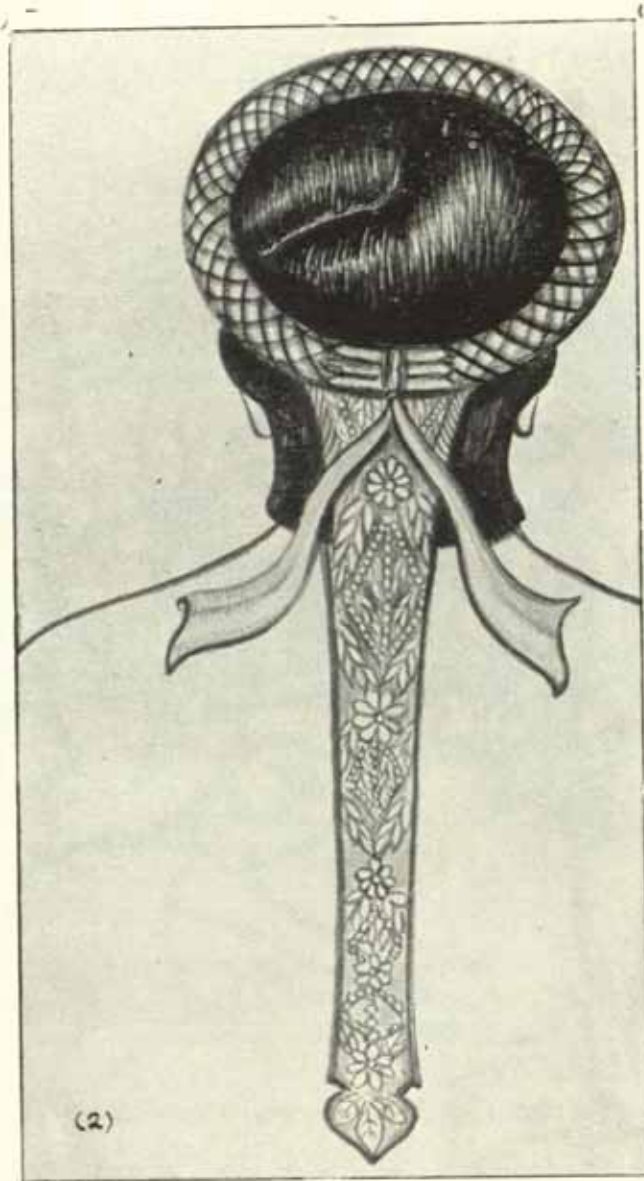
शकराजमहिषी-प्रतिमा के पृष्ठ भाग का रेखांकन ; मथुरा क सप्तर्षि टीला से प्राप्त
(मथुरा संग्रहालय)
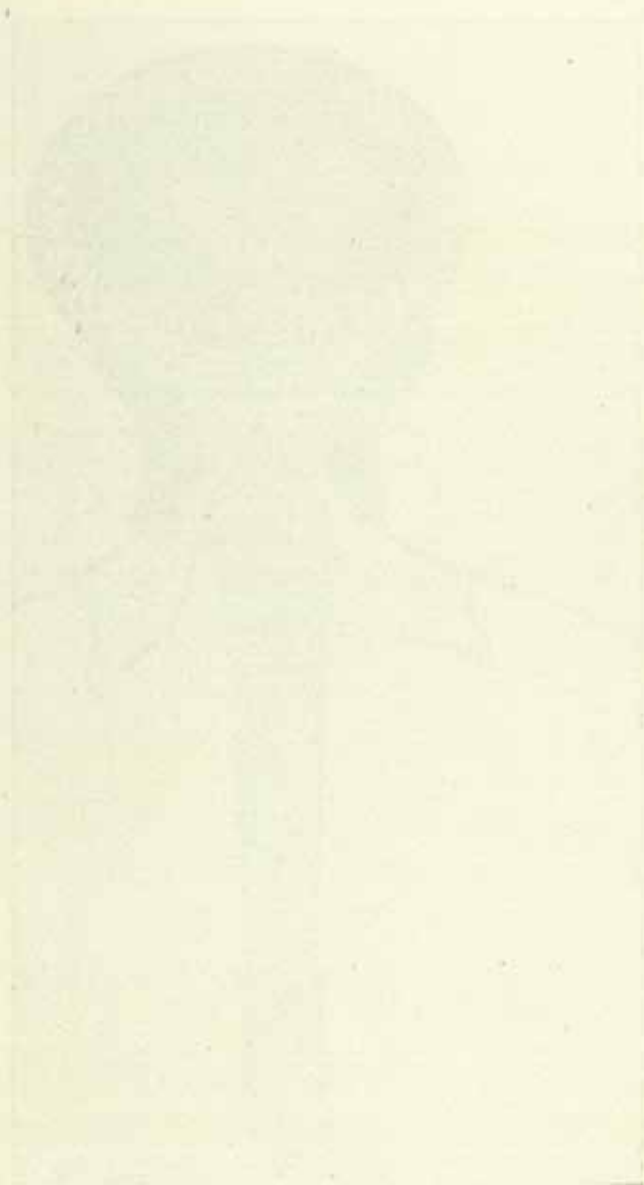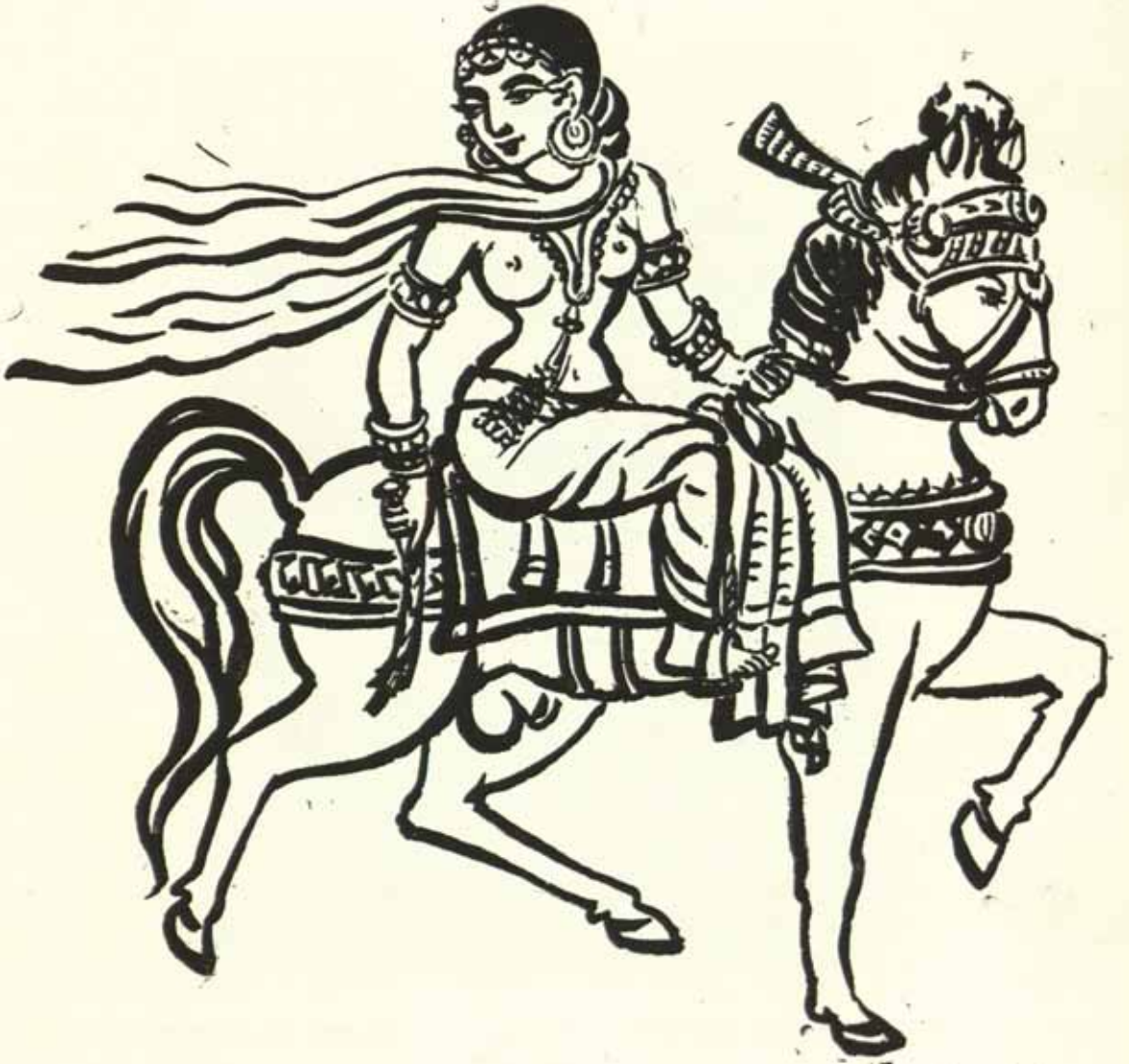
अश्वारोहिणी युवती; मथुरा-कला में रकाब का प्रदर्शन भारतीय कला में संभवतः सब से प्राचीन है।
(बोस्टन संग्रहालय, अमेरिका)
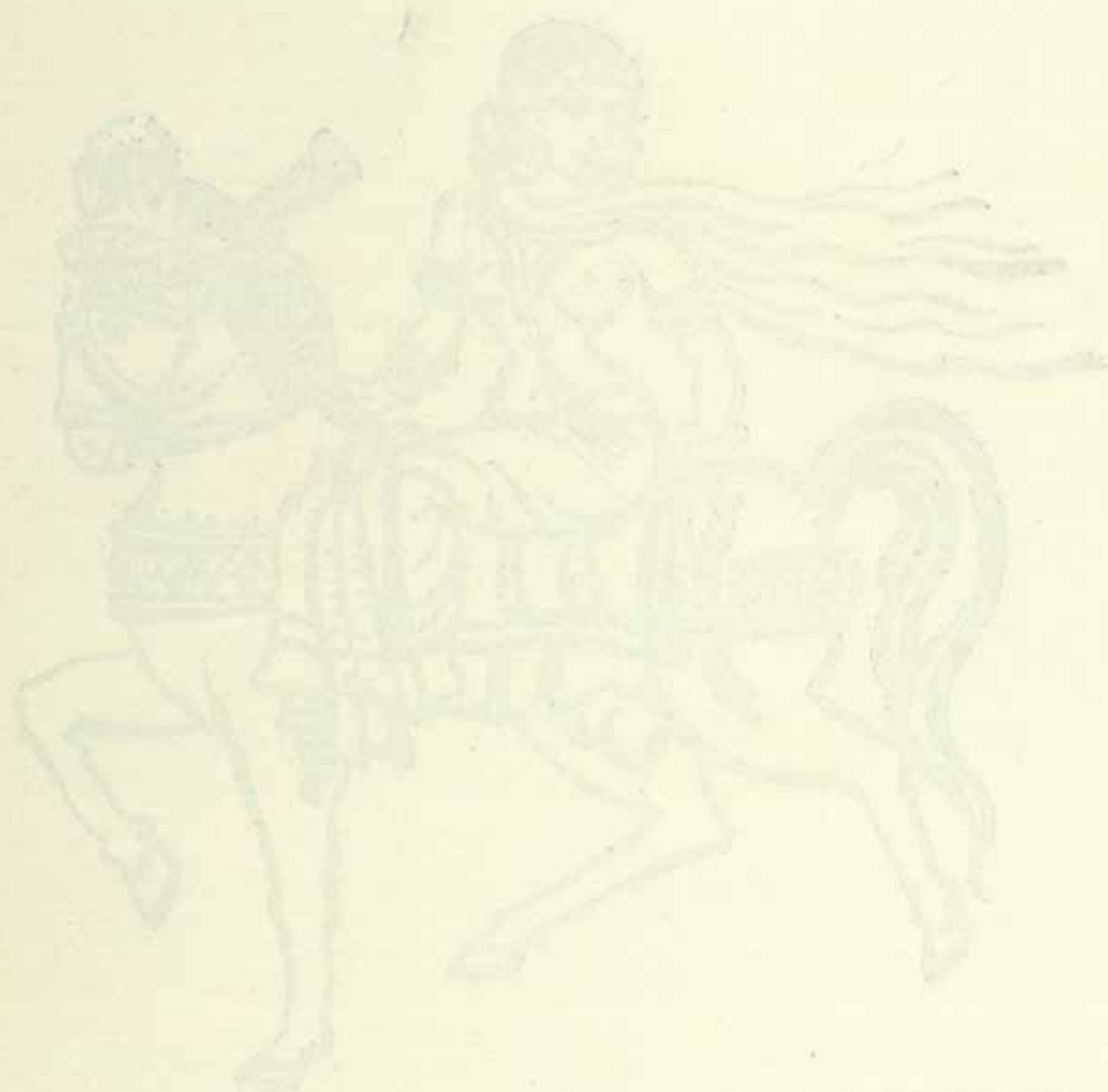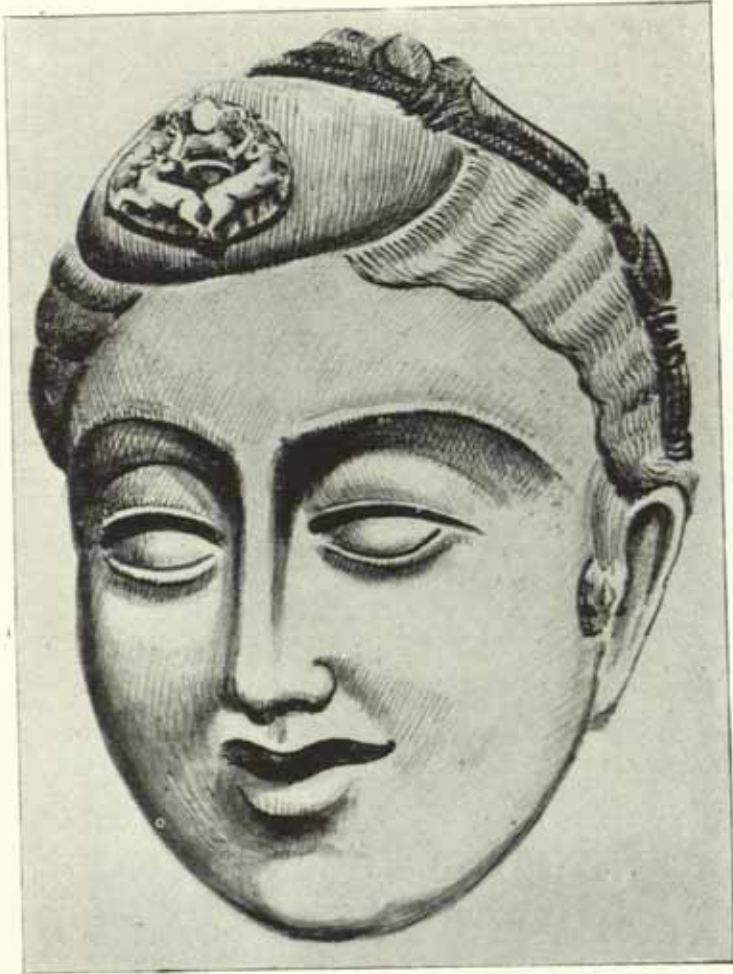
कलापूर्ण केशविन्यास सहित स्त्री-सिर। ललाट के ऊपर रथारूढ़ सूर्य का अंकन है ; कुषाण काल
(लखनऊ संग्रहालय)

फलक—२०
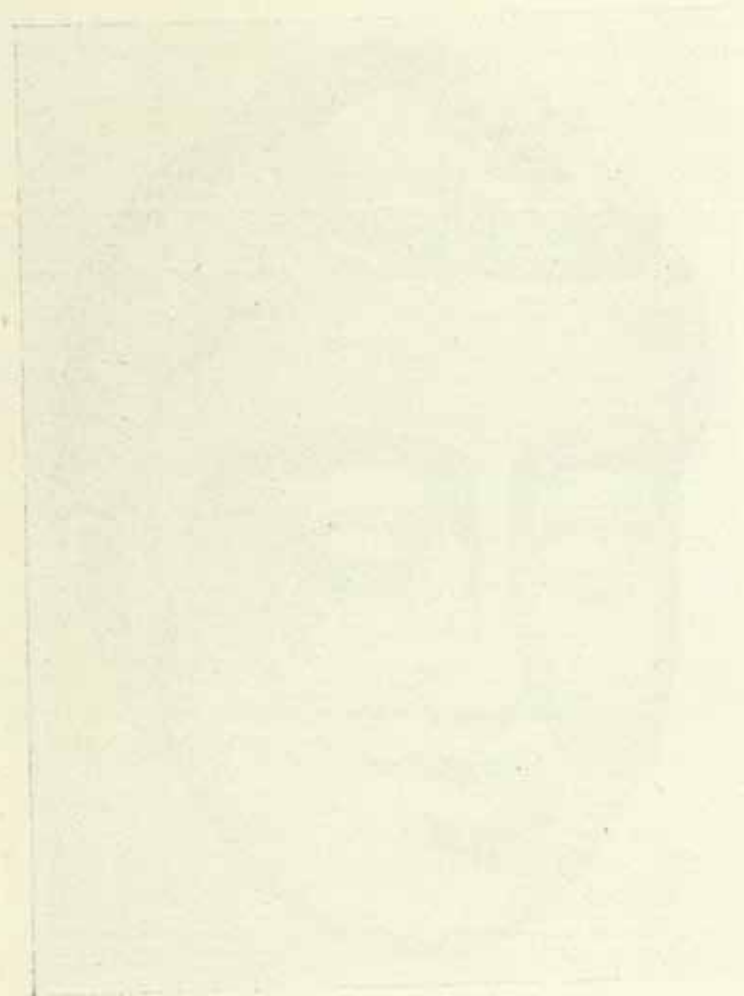
अभय मुद्रा में स्थित बुद्ध की सर्वांगपूर्ण अभिलिखित मूर्ति; कटरा केशवदेव, मथुरा से प्राप्त; समय ई० दूसरी शती ।
(मथुरा संग्रहालय)
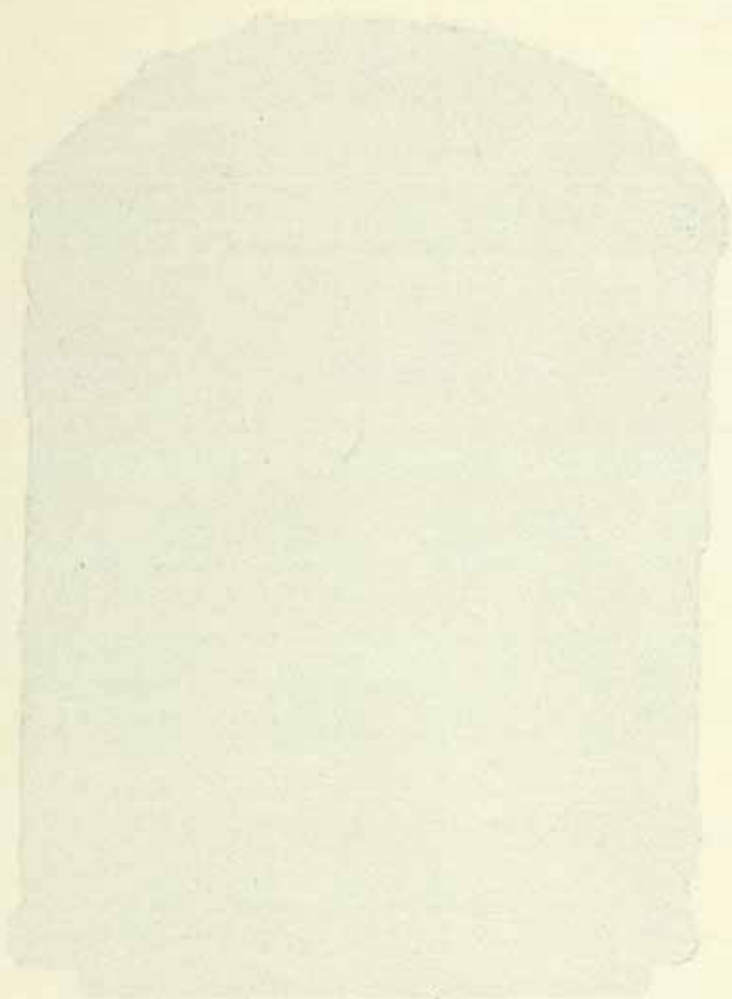
पद्मपाणि अवलोकितेश्वर; मथुरा से प्राप्त; समय-लगभग ३०० ई०
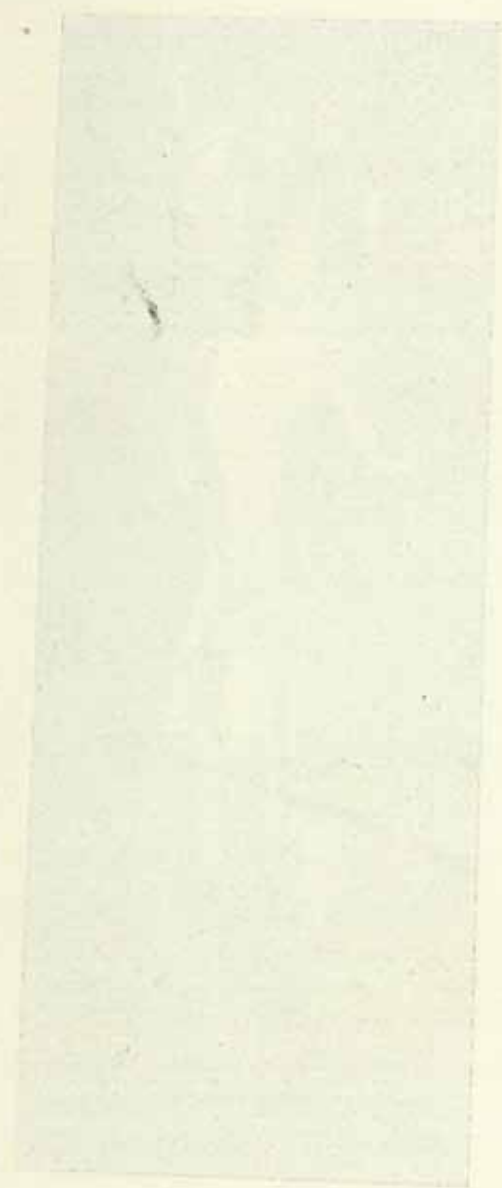
ख

क---विदेशी शकों द्वारा शिवलिंग-पूजन; कुषाण काल (मथुरा संग्रहालय)

ख---पशु-पक्षियों का चिकित्सालय-कक्ष ; बायीं ओर चिकित्सक यक्ष की दुखती हुई आंख का निरीक्षण कर रहे हैं। दायीं ओर दूसरे मर्कट डाक्टर अंधे उलूक की आंख का आपरेशन कर रहे हैं। उत्तर शुंगकाल (मथुरा संग्रहालय)

ग

घ

ग---कच्छप जातक; दो लड़के वाचाल कछुवे की मरम्मत कर रहे हैं; कुषाणकाल (मथुरा संग्रहालय)

घ---उलूक जातक; हाथों में घट लिये हुए दो शाखामृग सिंहासन पर बैठे हुए उलूक का अभिषेक कर रहे हैं। (मथुरा संग्रहालय)

फलक—२३

अग्नि की प्रतिमा; कुषाण काल (मथुरा संग्रहालय)
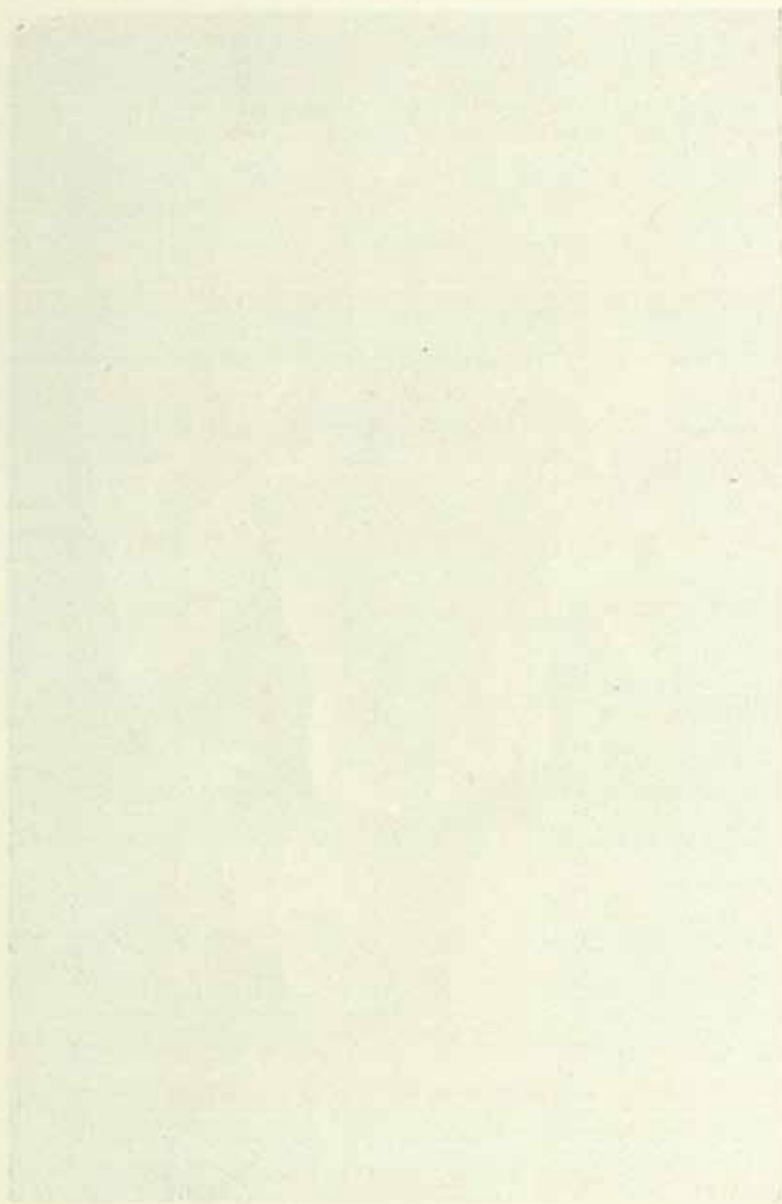
अभय मुद्रा में शक्तिधारी कार्तिकेय की अभिलिखित मूर्ति; ई० प्रथम शती
(मथुरा संग्रहालय)
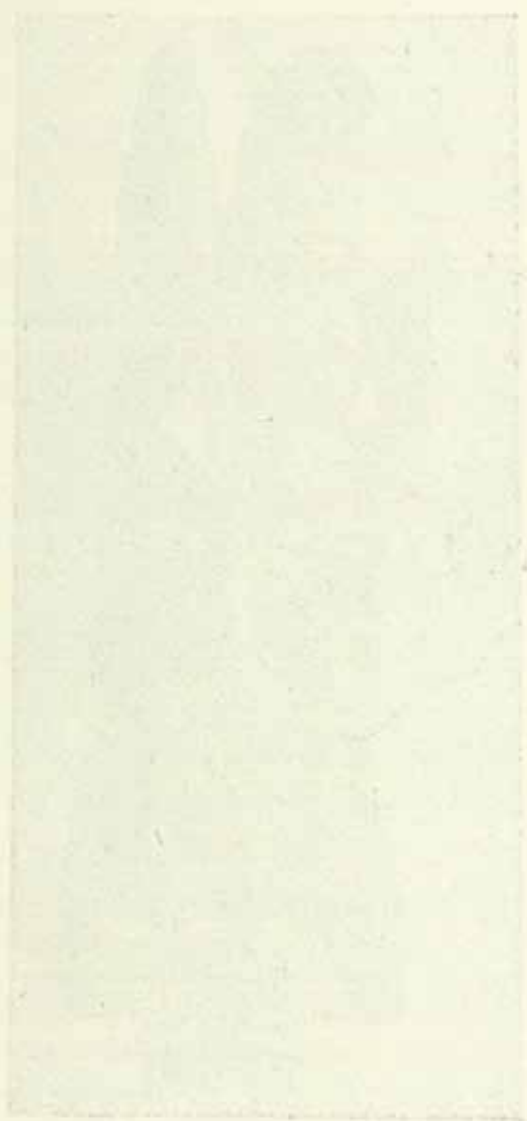
फलक—२५

सम्यक् संबुद्ध बुद्ध की अभिलिखित मूर्ति; गुप्तकाल (मथुरा संग्रहालय)
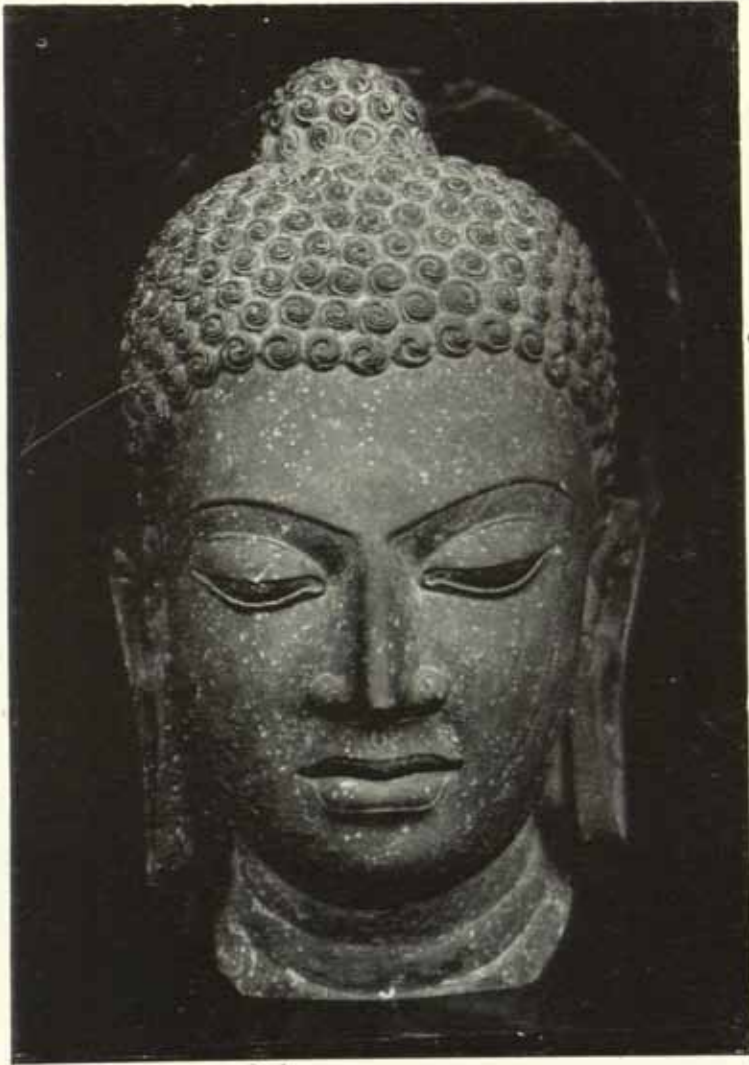
कुंचित केशयुक्त बुद्ध सिर; मथुरा के चामुंडा टीला से प्राप्त (मथुरा संग्रहालय)
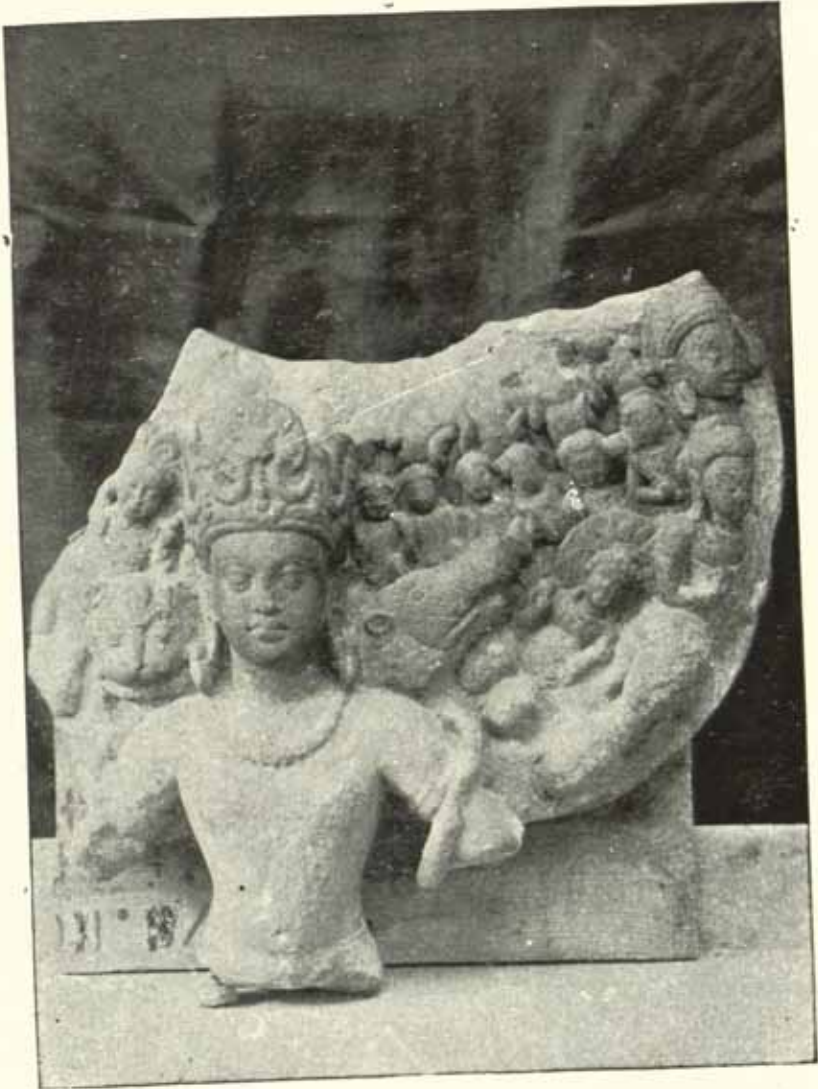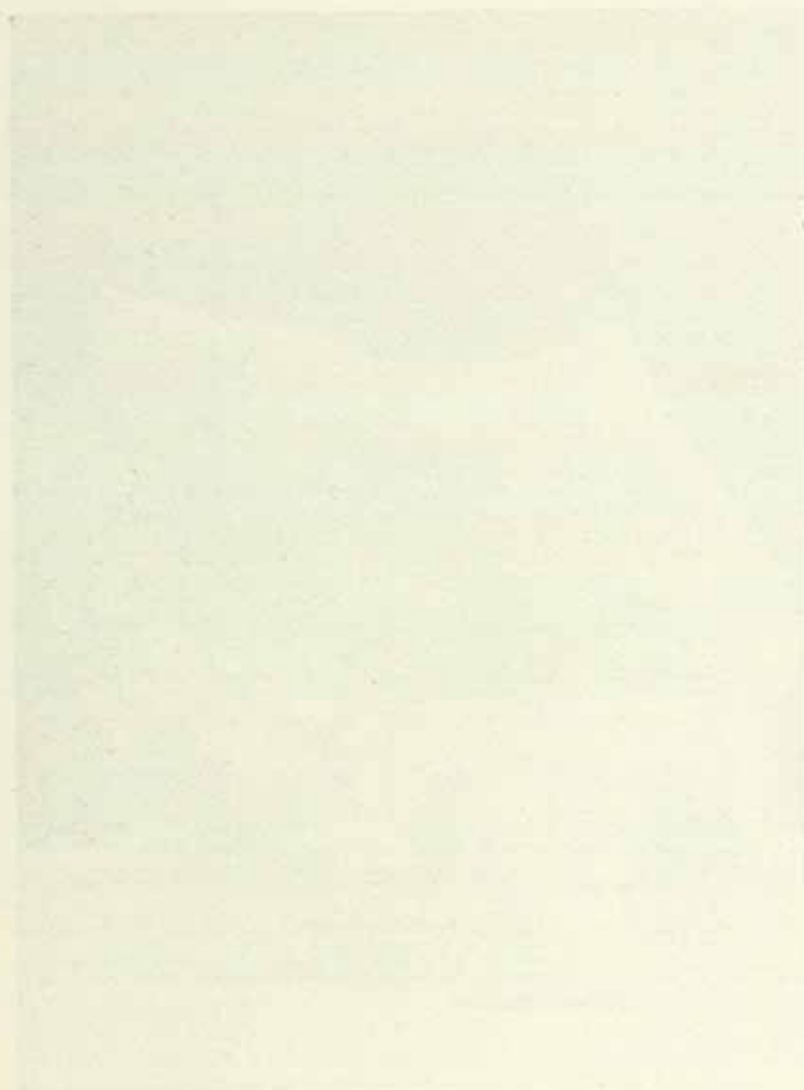
फलक—२७
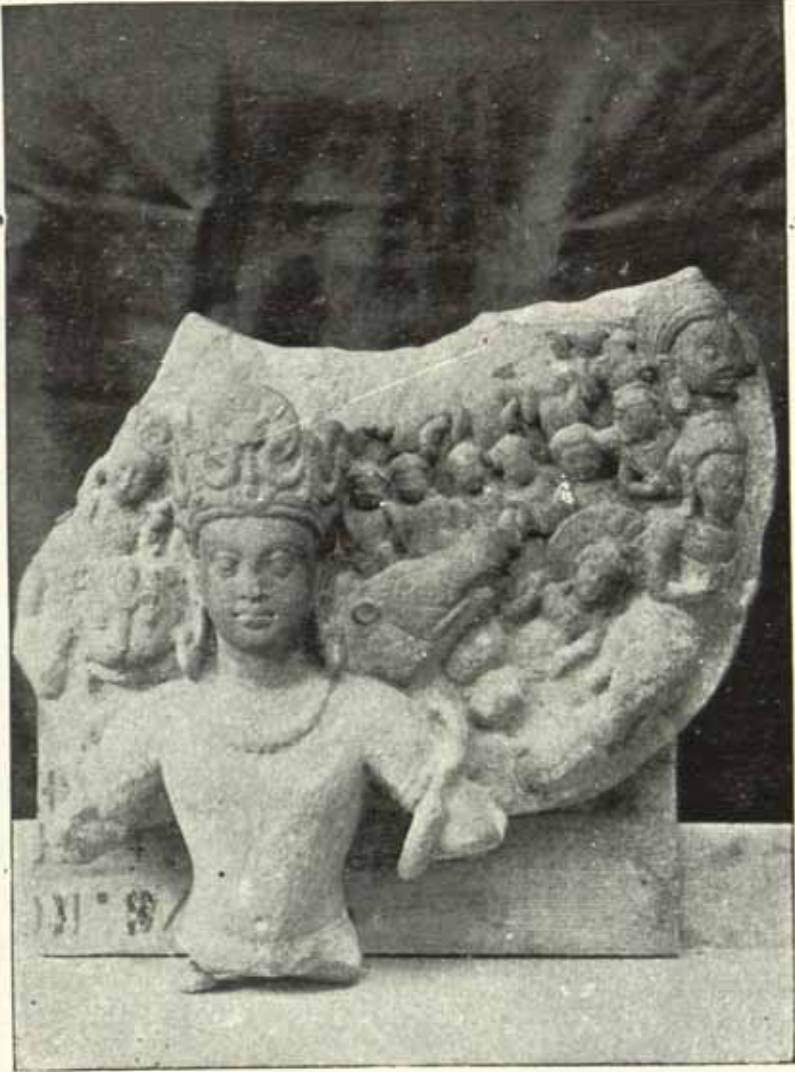
महाविष्णु; अलीगढ़ जिले से प्राप्त; गुप्त काल (मथुरा संग्रहालय)

महाविष्णु; अलीगढ़ जिले से प्राप्त; गुप्त काल (मथुरा संग्रहालय)
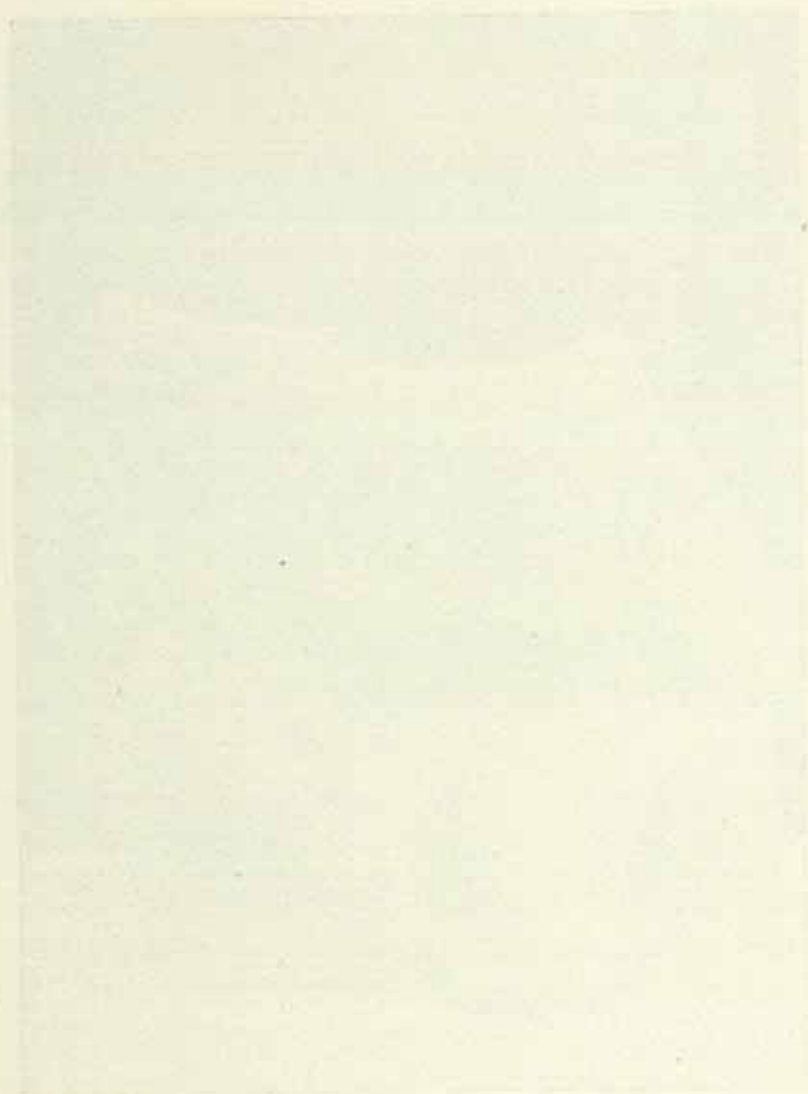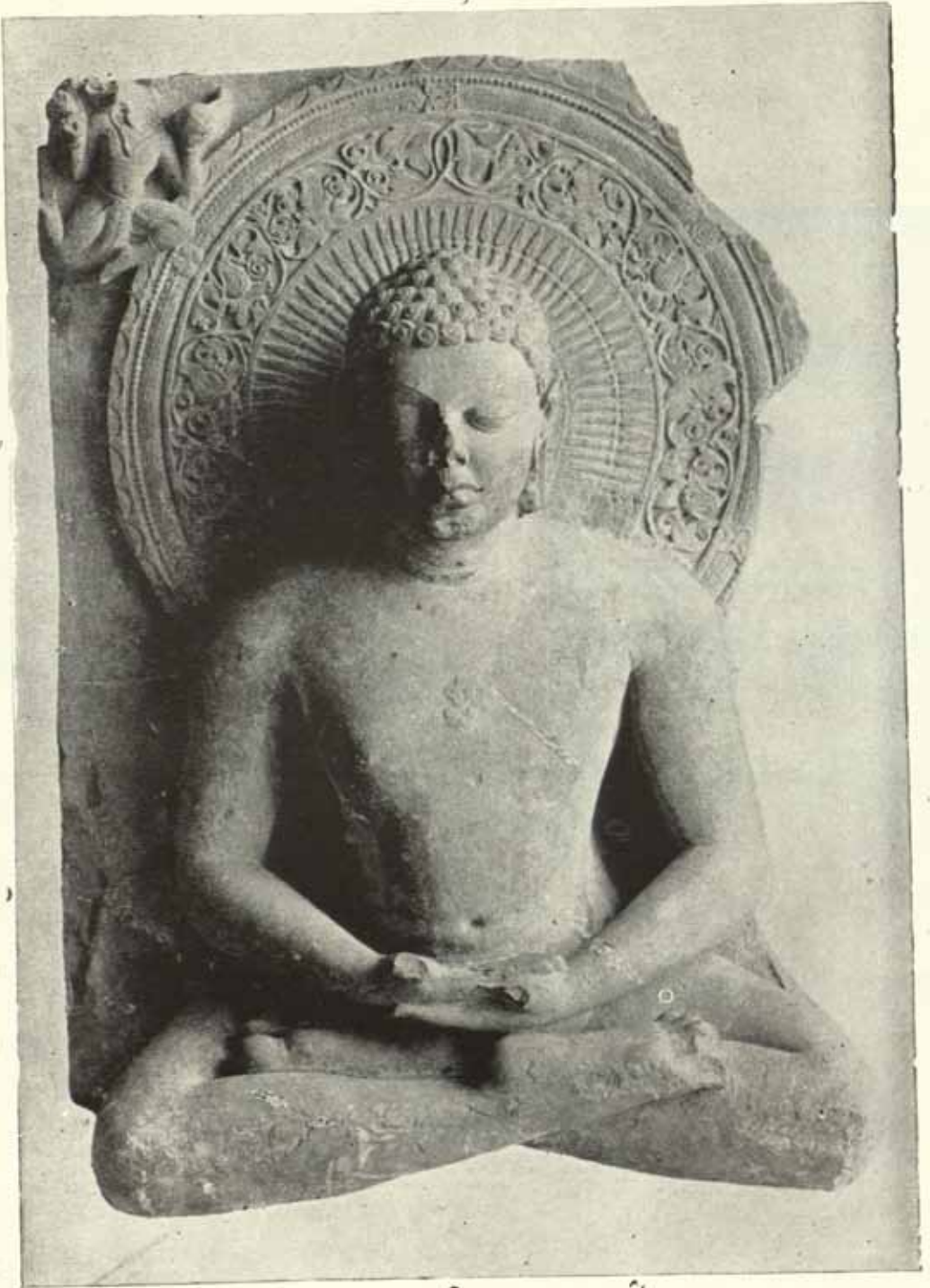
ध्यानमुद्रा में अवस्थित तीर्थंकर ; पीछे कलापूर्ण प्रभामंडल है; गुप्त काल
(राजकीय संग्रहालय, लखनऊ)

फलक—२६
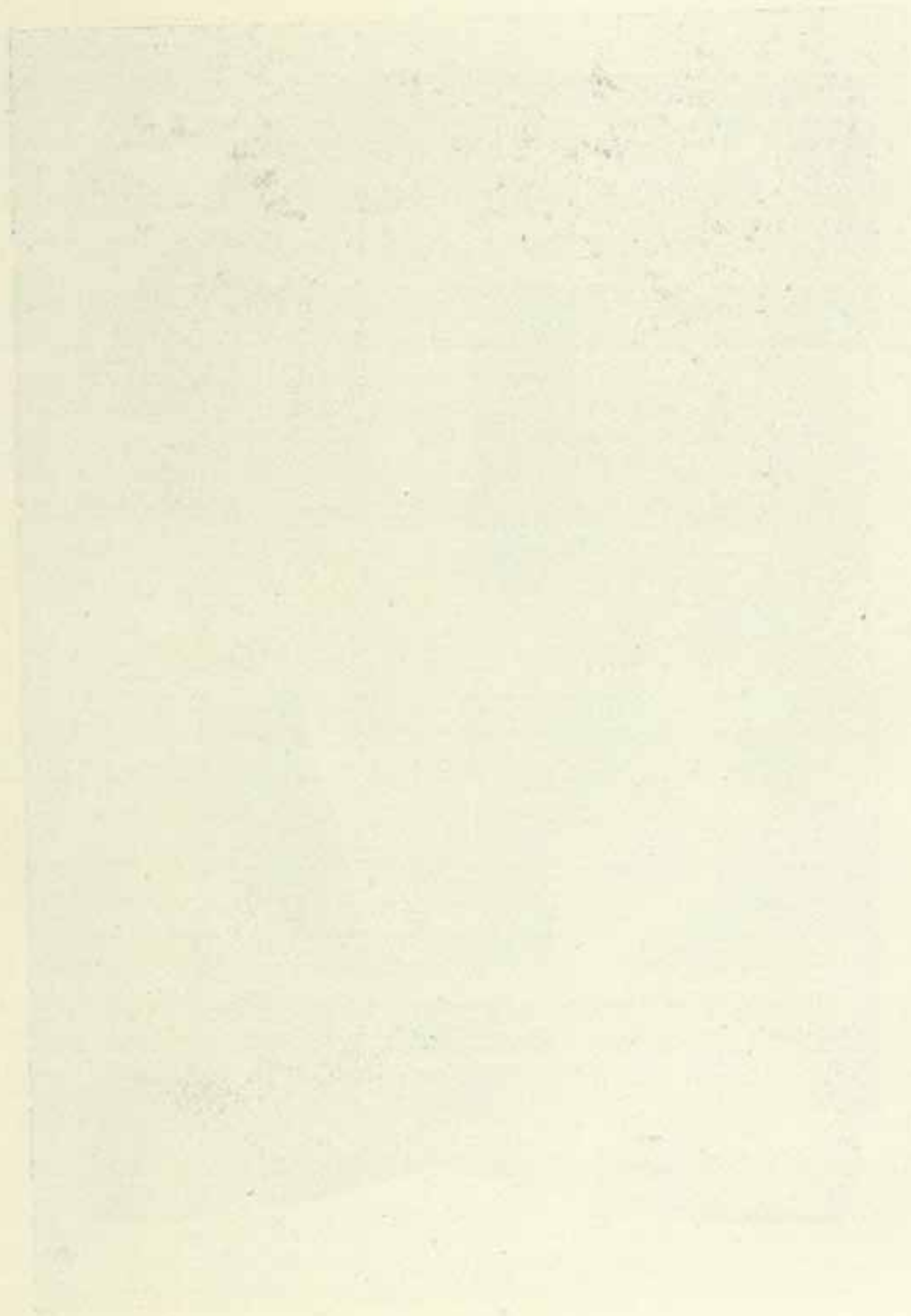
क—अलंकृत केशपाश सहित मथुरा की सुन्दरी; ई० सातवीं-आठवीं शती
(मथुरा संग्रहालय)

ख—स्तंभ का ऊपरी भाग, जिसपर किन्नर-मिथुन, पत्रावली, क्षुद्रघंटिका आदि का आलेखन है; महावन से प्राप्त (मथुरा संग्रहालय)

फलक—३०
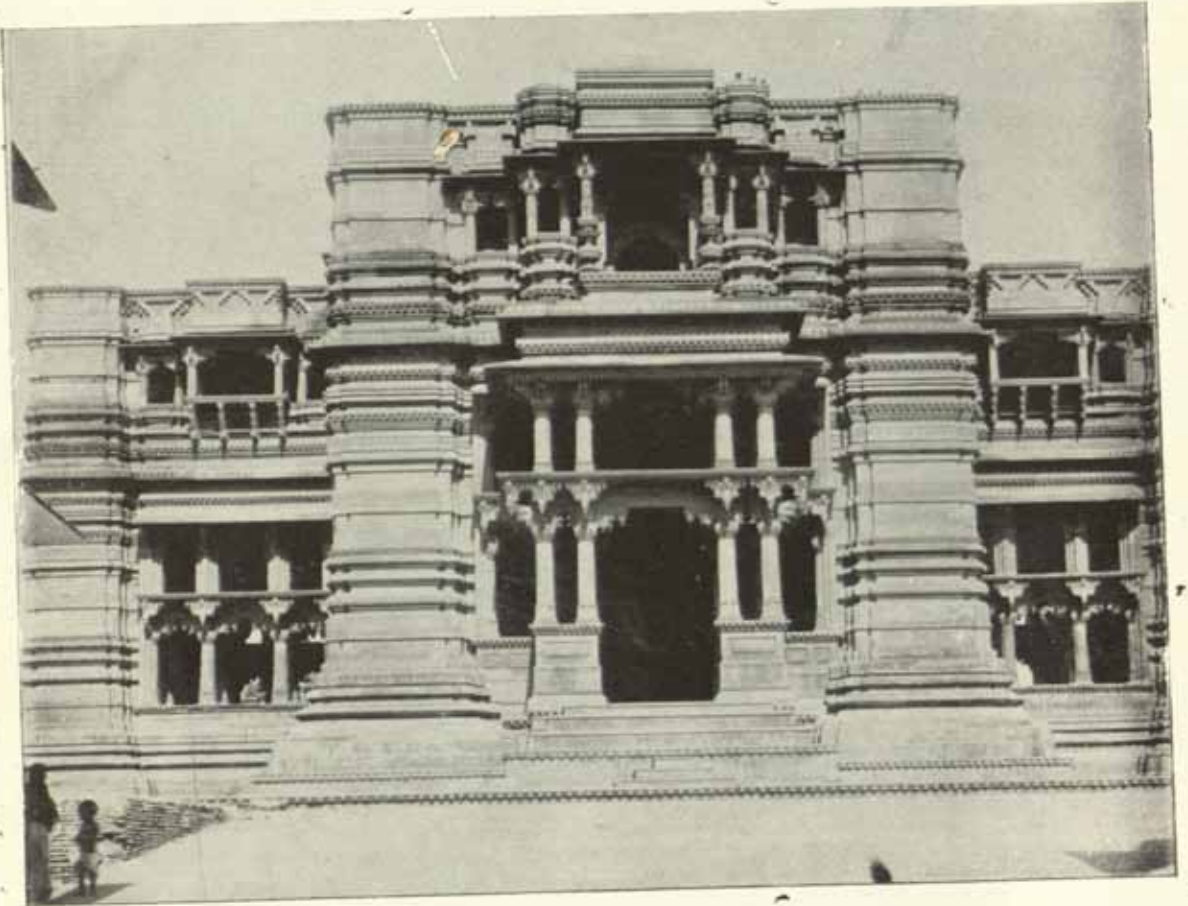
गोविन्द देव का मन्दिर, वृन्दावन; समय—ई० सोलहवीं शती
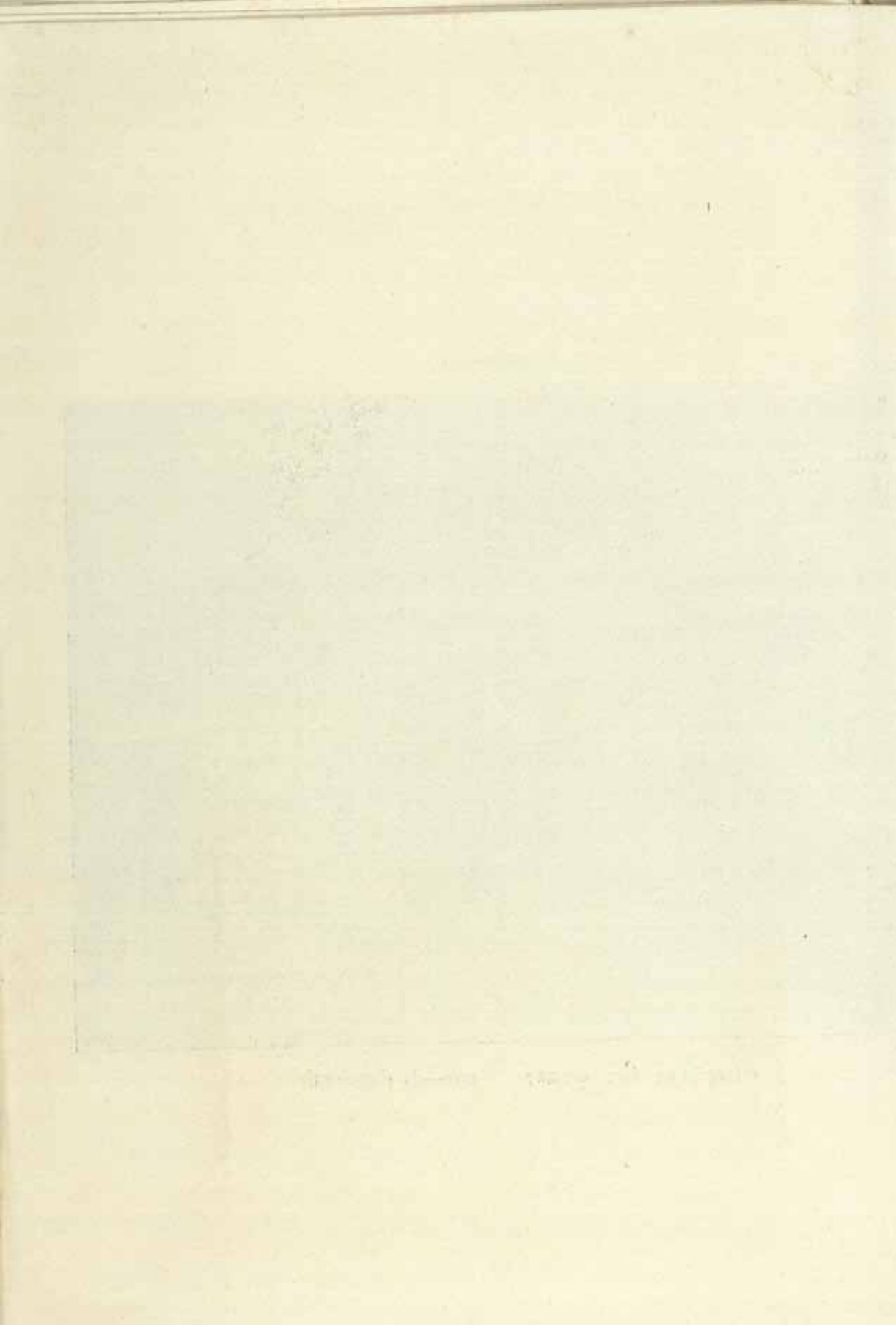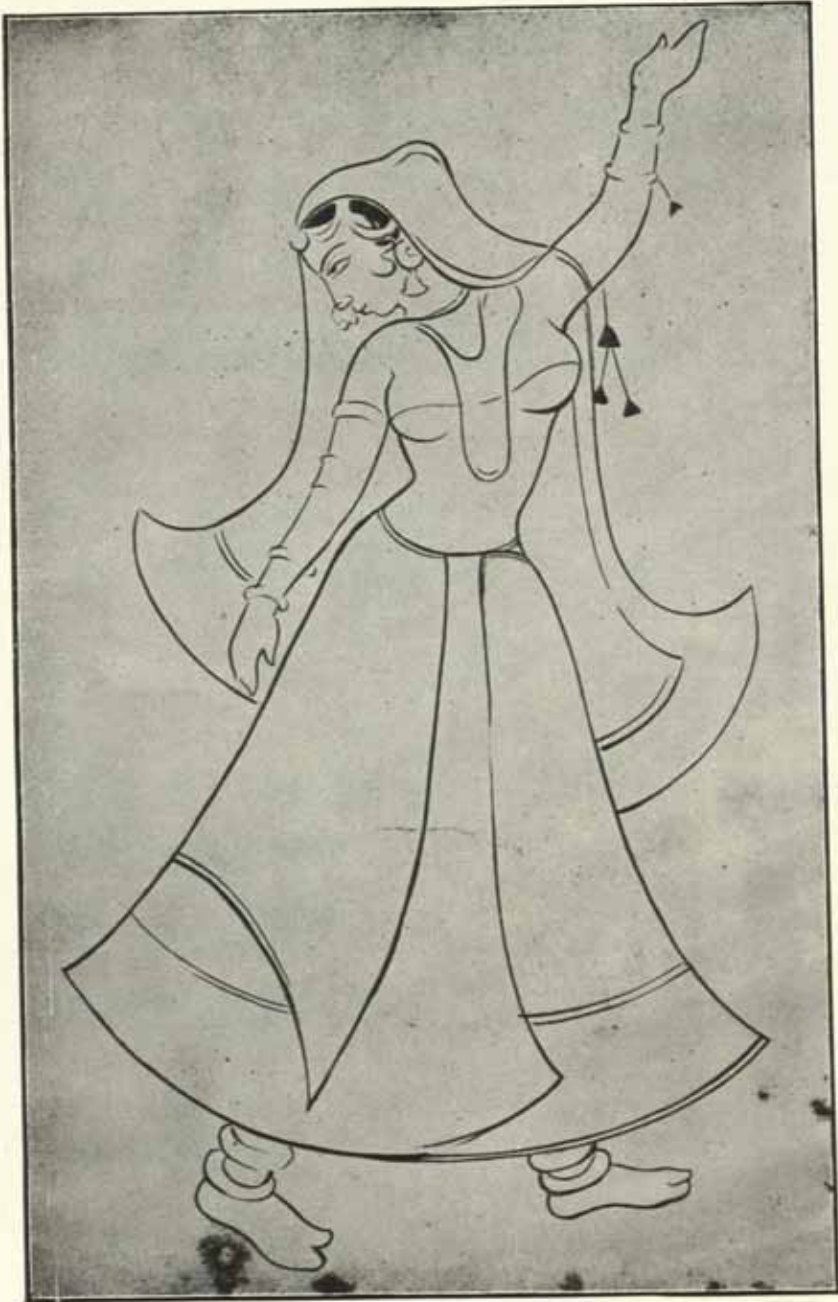
गूजरी-नृत्य; ब्रज के आधुनिक कलाकार श्री जगन्नाथ अहिवासी की कृति।

पी० एस० यू० पी०—ए० पी०—५ मित—१९५५—२,००० ।

पश्चिमी-उत्तर प्रदेश का प्राचीन मान चित्र